SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY
Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

हिंदी उपन्यासकार प्रेमचन्द पर विशेष अध्ययन (HNL-504)

Semester-I

Author- Sangita Tiwari

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education
Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

प्रेमचंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 5

इकाई 2

सेवासदन 15

इकाई 3

प्रेमाश्रम 28

इकाई 4

रंगभूमि 39

इकाई 5

गबन 52

vf/kxe ifj.kke Learning out comes

fo|kFkh lh[ku e leFk gkx

bdkbl &1

- fo|kFkh fgUnh x|&lkfgR; dh fo/kkvk d ckj e tku ldx
- o e'kh iepn d 0;fDrxr ,o lkfgfR;d thou dk v/;;u dj ldx
- o e'kh iepn dh lkfgfR;d fo'k'krkvk dk v/;;u dj ldx

bdkbl &2

- fo|kFkh e'kh iepn d miU;kl lokInu dh vroLr dk v/;;u dj ldx
- o lokInu d vkiU;kfld&f'kYi dk v/;;u dj ldx
- lokInu dh ukf;dk leu d pfj= dk fo'y'ku dj ldx

bdkbl &3

- fo|kFkh e'kh iepn d miU;kl iekJe dh vroLr dk v/;;u dj ldx
- miU;kl iekJe e of.kr ;xhu lekt vkj iepn dk vkn'kokn dk v/;;u dj ldx
- iekJe miU;kl d ik=k d pfj=k dk fo'y'ku dj ldx

bdkbl &4

- fo|kFkh e'kh iepn d miU;kl jxHkfe e of.kr vk|kfxd leL;k d dkj.kk dk tku ldx
- fo|kFkh jxHkfe miU;kl d ek/;e xk/khoknh n'ku dk v/;;u dj ldx
- o ljnkl d pfj= d ek/;e l thou l?k'k dk lh[k ldx

bdkbl &5

- fo|kFkh e'kh iepn dh lkfgfR;d fo/kkvk dk v/;;u dj ldx
- o e'kh iepn d lkfgR; e ;FkkFkokn ,o vkn'kokn dk tku ldx
- o e'kh iepn d lkfgR; d ek/;e l Hkkjrh; d'kd lekt dk v/;;u dj ldx

हिन्दी उपन्यासकार प्रेमचन्द पर विशेष अध्ययन

इकाई - 1

प्रेमचंद व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रेमचंद के व्यक्तित्व और जीवन दृष्टि

प्रेमचंद का साहित्य

प्रेमचंद की साहित्यिक मान्यताएँ

प्रेमचंद के उपन्यास और हिन्दी आलोचना

इकाई -2

सेवासदन

सेवासदन : अंर्तवस्तु का विश्लेषण

सेवासदन : शिल्प विआान (औपन्यासिक शिल्प)

सेवासदन : की नायिका (सुमन)

इकाई - 3

प्रेमाश्रम

प्रेमाश्रम और कृषि समाज

प्रेमाश्रम युगीन भारतीय समाज और प्रेमचन्द का आदर्शवाद

प्रमाश्रम का औपन्यासिक शिल्प

ज्ञानशंकर का चरित्र

इकाई - 4

रंगभूमि और औद्याोगिकरण की समस्या

रंगभूमि पर स्वाधीनता आन्दोलन और गाँधीवाद का प्रभाव

रंगभूमि औपन्यासिक शिल्प

सूरदास का चरित्र

इकाई - 5

गबन

गबन और राष्ट्रीय आन्दोलन

गबन और मध्यवर्गीय समाज

गबन का औपन्यासिक शिल्प

इकाई 1

प्रेमचंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

1.1 प्रेमचंद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
1.2 प्रेमचंद का साहित्य
1.3 प्रेमचंद की साहित्यिक मान्यताएँ
1.4 प्रेमचंद के उपन्यास और हिन्दी आलोचना
1.5 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

1.1 प्रेमचन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रेमचंद की मृत्यु को चार दशक से अधिक बीत चुके हैं। हर दशक के कथाकारों ने उन्हें अपनी-अपनी कसौटी पर परखा और स्वीकारा है। ऐसे समकालीन लेखक भी हैं जिन्हें शायद प्रेमचंद का नाम ही निरर्थक जान पड़े - क्योंकि उनकी सर्जन यात्रा में वह उन्हें किसी भी रूप में प्रासंगिक नहीं जान पड़ते, किंतु ऐसे कथाकारों की रचनाओं में भी हमें प्रेमचन्द की अदृश्य छाया मिल जाती है। एक अर्से से हमारे आलोचकों में भ्रांति है कि किसी लेखक की उपस्थिति या प्रभाव को उसके विचारों या विश्वासों से खोजना, जबकि सत्य यह है कि साहित्य में किसी लेखक के विश्वासों की उसकी रचनाओं में अलग कोई हैसियत नहीं है। यदि आज हम अपने बीच प्रेमचंद की उपस्थिति महसूस करते हैं तो उनके प्रगतिशील विचारों या यथार्थवादी आदर्शों के कारण नहीं बल्कि उनकी रचनाओं में निहित मनुष्य एक भारतीय मनुष्य की मानसिक बनावट के कारण जिसे फलने, फूलने में सैंकड़ों वर्ष लगे थे ख्र एक स्थिर व्यक्तित्व का चेहरा जिसका दर्शन हमें पहली बार उनकी कहानियों-उपन्यासों में हुआ था। एक चेहरे का सत्य नहीं बल्कि ऐसे सत्य का चेहरा जिसे उन्होंने शहरी, ग्रामीण, कस्बाती चेहरों के बीच गढ़ा था। प्रेमचंद का विश्वास कि एक भारतीय मनुष्य वह किसान हो या एक निम्न मध्यवर्गीय कस्बाती, अर्ध शिक्षित क्लर्क या कर्मचारी अपनी पुरानी, खोई हुई खुशी को खोज सकता है। वह बाद के वर्षों के धीरे-धीरे एक मरीचिका-सा बनता गया। यह एक भारतीय लिबरल बुद्धिजीवी की मरीचिका थी। जिसकी झलक पहली बार बीसवीं सदी के शुरू में दिखाई दी थी। हमें हैरानी होगी कि प्रेमचन्द ही नहीं भारत के अनेक शहरी बुद्धिजीवी-जिनमें स्वयं गाँधी जी शामिल थे एक समय में भारतीय समाज की मुक्ति बाहर के दुश्मनों से छुटकारा पाने में खोजते थे-वह चाहे गाँधी जी की आँखों में विदेशी सत्ता हो, या प्रेमचंद की आँखों में समाज की कुरीतियाँ और अंधविश्वास हो, आशा यह थी कि एक बार इनसे छुटकारा पाने के बाद हम दैन्य और दरिद्रता के आँसू भारतीय चेहरे से पोंछ सकेंगे। यह कुछ वैसा ही भ्रम था, जैसे कोई बीमार आदमी यह सोचे कि उसके रोग का कारण उसके मैले-कुचैले कपड़ों से जुड़ा है एक बार हिम्मत जुटाकर वह अपने चिथडों को उतार फेंके और तब अचानक पहली बार देखे कि समूची देह कोढ़ के जख्मों से अटी है, रोग कपड़ों में नहीं था उल्टे उन्होंने ही रोग को अपने भीतर छिपा रखा था।

यह सही है कि हम अपनी सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न को केवल अपने समय के तकाजों के में ही परिभाषित कर सकते हैं। लेकिन खुद समय के तकाजों के झूठ-सच को समझने के लिए हमारे पास केवल अपने अस्तित्व के अलावा कोई दूसरी कसौटी नहीं है। प्रेमचंद मनुष्य की बुनियादी अच्छाई विश्वास करते थे एक सुनिश्चित भारतीय लिबरल का आशावादी दृष्टिकोण उन्होंने अपने जीवन में मन रूप से अपनाया था-भारतीय किसान के सहज जीवन की अंतरंग समझ और सहानुभति के बल 'अच्छाई' की एक परिभाषा बनी थी जो सीधे-सीधे एक भारतीय मनुष्य के धर्म से जुड़ी थी। प्रेम कर अधिकांश लेखन में कभी इस अच्छाई पर शंका नहीं प्रकट करते, क्योंकि उस पर शंका करने का मतल होगा एक हिन्दुस्तानी के व्यावहारिक धर्म और दायित्वों पर शंका प्रकट करना। वह यदि अपनी आधिक कहानियों और उपन्यासों में समाज सुधार की बात करते हैं तो इसलिए नहीं कि उन सुधारों के काम मनुष्य सामंतवादी रिश्तों के भीतर एक स्वतंत्र, गरिमापूर्ण सत्ता उपलब्ध करेगा। बल्कि इसलिए कि वह इन रिश्तों के भीतर पुनः अपने धर्म और दायित्वों को निविघ्न संपन्न करने की सुविधा पा सकेगा। उन्हें मनुष्य के सामाजिक रिश्तों में अदम्य विश्वास था। प्रेमचंद के उपन्यासों में पहली बार किसान के दर्शन होते हैं। किन्तु वह "औपनिवेशिक किसानश था। उसके नीचे दबे भारतीय किसान का मूल चरित्र संस्कृति, धार्मिक आस्था (जो व्यावहारिक धर्म से अलग है), मनुष्य प्रकृति और ईश्वर के बारे में उसके परांपरागत विश्वास-उनके सृजन की रोशनी में ऊपर नहीं आते। प्रेमचंद ने भारतीय

टिप्पणी

किसानों की ऐतिहासिक विकृति को देखा था-किन्तु उस चीज को मूल सांस्कृतिक बनावट मे और अपने गैर-ऐतिहासिक रूप में क्या था-जो विकृत हुआ था, उसकी अंतदृष्टि प्रेमचंद में नहीं मिलती। प्रेमचंद अक्सर उस पक्ष को अनदेखा कर देते हैं जिसमें भारतीय किसान की सांस्कृतिक विरासत छिपी थी। इस दृष्टि से प्रेमचंद सच्चे और बुरे अर्थों में तीसरी दुनिया के लेखक थे यह उनकी ऐतिहासिक उपलब्धि और कलात्मक सीमा थी। सीमा इसलिए क्योंकि कला में हर लेखक की दुनिया पहली दुनिया होती है-खासकर एक भारतीय लेखक के लिए जिसका अतीत परंपरा और जीवन दृष्टि-बाकी दुनियाँ से मूलत: भिन्न रहे हैं इतिहास का यह धर्म है कि वह हर देश को किसी न किसी दुनिया के कटघरे में खड़ा कर सके। कलाकार का धर्म है कि वह हर कटघरे से मुक्ति पाकर अपनी प्राथमिक और मौलिक दुनिया में प्रवेश करने का साहस जुटा सके। यह साहस कहना न होगा उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में विवेकानन्द ने जुटाया था। स्वयं प्रेमचंद के समकालीन गाँधी ने बड़ी सतर्कता से औपनिवेशिक दबावों और विकृतियों को भारतीय जीवन की मलधारा और विकृति के संदर्भ में विश्लेषित करने का प्रयत्न किया था। यह वह समय भी था। जब प्रेमचंद अपनी सृजनात्मक शात के चरम शिखर पर थे और उन्होंने अपने अन्तिम उपन्यास और कहानियों में जहाँ हम उनके समस्त पुरान गुणों से परिचित होते हैं वहाँ दूसरी तरफ सहसा एक आश्चर्यजनक बोध भी होता है यह वही प्रेमचंद जिन्होंने गबन, निर्मला और रंगभूमि जैसे रोचक सीधे-सादे, मार्मिक उपन्यास लिखे थे-किन्तु उसके पर एक-दूसरे प्रेमचंद की भी झलक दिखाई देती है जिसे हमने पहले कभी नहीं देखा था। हल्की-सी नाराजगा, कुछ दबा हुवा आक्रोश, एक बेचौन सी हताशा, जो पिछली कहानियों की परत और पराजित निराशा अलग थी और अनुभव के इन खंडित टुकड़ों के पीछे सत्य का एक अखंडित बोध परिलक्षित होता है। शायद स्वयं प्रेमचंद की जीवन-यात्रा में एक आश्चर्यजनक खोज थी। प्रेमचंद ने अपनी आँखों से उन स मल्यों को विषाक्त होते देखा था, जिनके प्रति अपने आरंभिक उपन्यासों में उन्होंने इतना गहरा लगाव और निष्ठा प्रगट की थी। मनुष्य का व्यावहारिक धर्म, ईमानदारी दायित्व की भावना जो सामंती ढाँचे के भीतर हुई मनुष्य के आपसी रिश्तों में मानवीयता संभालकर रखते थे। अक्सर औपनिवेशिक व्यवस्था के विरोध में कहा जाता है कि वह तीसरी दुनिया सामंती शक्तियों से गठजोड़ करती है लेकिन यह अर्धसत्य है। यह यदि सामंती सत्ता से गठजोड़ करती है तो दूसरी तरफ उसी व्यवस्था में पलने वाले परम्परागत मानवीय रिश्तों को भ्रष्ट भी करती है, और नष्ट करने की यह प्रक्रिया पैसे के रिश्तों से आरंभ होती है और यह पूरा सत्य है महाजनी, सभ्यता का भयानक ओर विषैला सत्य जिसे एक बार देख लेने के बाद प्रेमचंद की दुनिया पहले जैसी नहीं, न्याय, धर्म, संस्कार और जातीय दायित्व में उनके भोले विश्वासों पर एक काली, लंबी छाया-सी आ पड़ी। यही छाया मनुष्य की आत्मा के बीचो-बीच खिंची हुई अंधेरी खाई, जिसकी क्रूर किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली अभिव्यक्ति हमें 'गोदान' और उससे भी अधिक 'कफन'-जैसी कहानियों में दिखाई देती हैं। प्रेमचन्द के अंतिम कहानियों और उपन्यासों की एक बड़ी उपलब्धि है अब यह हिन्दुस्तानी किसान को सिर्फ औपनिवेशिक चौखटों में ही नहीं देखते। बल्कि वह उसे सीधे-सीधे आधुनिक स्थिति की विडंबनाओं में ले जाते हैं-स्थिति अब भी औपनिवेशिक जड़ता और उत्पीड़न में डूबी है। लेकिन प्रेमचंद अब उसे एक ऐसे संकट के संदर्भ में देखते है जो महज तीसरी दुनिया के बाहरी उपादानों द्वारा अनुशासित नहीं है बल्कि अब वह व्यक्ति और समाज के बीच रिश्तों में घुन की तरह चिपका है। प्रेमचंद ने जैसे एक कहानी में अंतिम रूप से फैसला ले लिया हो कि वह उन सब मूल्यों को एक-एक करके कलंकित करेंगे जिन्हें वह धर्म और पवित्रता का प्रतीक मानते थे सामंतवादी समाज में एक संस्कारग्रस्त धर्मशील व्यक्ति का विद्रोह केवल दूषण के रूप में हो सकता है उन समस्त मर्यादाओं को दूषित और हास्यापद बना देता था। जिन्हें हम पुरातनकाल से पुनीत और पवित्र मानते आये हैं।

टिप्पणी

प्रेमचंद की अधिकांश रचनाएँ यूरोप के उन्नीसवीं सदी में विकसित यथार्थवादी ढाँचे में की गई थी-यह ढाँचा कथ्यात्मक फोर्म एक तरह से अन्य विश्वव्यापी आधुनिक उपकरणों की तरह हर लेखक के लिए सुलभ था जब कभी लेखक के जातीय अनुभवों को छोड़ देना ज्यादा सुविधाजनक मान लेता था प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के कुछ महत्वपूर्ण लेखकों ने अपने अनुभवों को व्यापक औपन्यासिक स्पेस देने के लिए प्रेमचंद के यथार्थवादी फार्म से अपने को मुक्त किया है। रेणु के उपन्यास इसका संजीव उदाहरण है। प्रश्न यथार्थ से विदा लेने का नहीं था स्वयं बदलते हुए यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए 'यथार्थवादी' ढाँचे की सीमाओं से मुक्ति पाना था।

1.2 प्रेमचंद का साहित्य

साहित्य का सम्बन्ध किसी ऐसी वस्तु से है जो हमारे इंद्रिय ज्ञान से परे है जो अनेकों में व्याप्त होते हुए भी एक और अनंत है। साहित्य की यह व्याख्या किसी हद तक प्रेमचंद के साहित्य की व्याख्या जैसी ही है श्हंसश में उन्होंने लिखा था "साहित्य उस उद्योग का नाम है जो आदमी ने आपस के भेद मिटाने और उस मौलिक एकता को व्यक्त करने के लिए किया है जो इस जाहिरी भेद की तह में पृथ्वी के उदर मे व्याकुल ज्वाला की भाँति छिपा हुआ है। जब हम मिथ्या विचारों और भावनाओं में पड़कर असलियत से दूर जा पड़ते हैं तो साहित्य हमें उस सोते तक पहुँचाता है जहाँ समतल अपने सच्चे रूप में प्रवाहित हो रही है।" साहित्य के प्रति उनका एक दूसरा दृष्टिकोण भी हमारे सामने आता है जिसे हम विदेशी और पश्चिमी कहने के आदी हैं। इनके अनुसार साहित्य किसी परोक्ष यथार्थ जो निर्मल, सनातन और अखंड है-को नहीं व्यक्त करता वरन उसकी सृष्टि ही दो तत्वों के द्वंद से होती है जो हमेशा बदलने वाले हैं। सत्य और असत्य का संघर्ष ही साहित्य है साहित्य का संबंध उस यथार्थ से है जिसने मनुष्य को मनुष्य से जटा का और जो बदलने वाला है और यह जुदा करने वाली वस्तु आदर्श नहीं है इसलिए इसे यथार्थ कह पानी और यहीं से प्रेमचंद में हम इन दोनों का संघर्ष देख सकते हैं साहित्य में जो प्रचलित यथार्थवाद है उसकी प्रेमचंद ने अनेक स्थलों पर निंदा की है और साहित्य को उससे बचने के लिए सचेत किया है। यथार्थवा मनुष्य की दुर्बलताओं का चित्रण है और इस प्रकार का चित्रण मनुष्य को दुर्बलताओं की ही ओर लेना सकता है। प्रेमचंद यहाँ एक मनोवैज्ञानिक सत्य के रूप में यह बात मान लेते हैं कि दुर्बलताओं के चित्रकार मनुष्य का मन उसकी और खिंचता ही है; इसकी विरोधी बात को कि दुर्बल को देख मनुष्य स्वयं सबल बनने की चेष्टा करता है वह एकदम अस्वीकार करते हैं। फिर इसी का क्या सबूत कि दुर्बलताओं में सत्य और सुंदर को पाकर मनुष्य उस सत्य और सुंदर को छोड़ दुर्बलताओं की ही ओर अधिक झुकेगा? तब तो उसकी आत्मा को संतोष होगा कि दुर्बलताओं के होते हुए भी कुछ अच्छाइयाँ उन्हीं के साथ लिपटी हुई उनके अंदर मौजूद हैं। साहित्य का ध्येय मनुष्य का पतन न होकर उत्थान ही है, एक ऐसा साहित्य भी हो सकता है जो नम्न यथार्थ का चित्रण करते हुए भी मनुष्य के उत्थान के लिए हो-इसकी ओर अभी प्रेमचंद ध्यान नहीं देते हैं। प्रेमचंद को यथार्थवाद से इसलिए भय है कि वह भयंकर है और मनुष्य को पतन की ओर ले जाने वाला है। उनका यह दृढ़ विश्वास कि मनुष्य कमजोरियों का पुतला है और उसकी कमजोरियों का चित्रण उसके लिए घातक हो सकता है उनके आदर्शवाद दृष्टिकोण को मूल कारण है वह कहते हैं, "मानव-स्वभाव की एक विशेषता यह भी है कि वह जिस छल, क्षुद्रता और कपट से घिरा हुआ है उसी की पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती। वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में उड़कर पहुँच जाना चाहता है जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से निजात मिले-वह भूजल जाये कि मैं चिंताओं के बंधन में पड़ा हुआ हूँ, जहाँ उसे सज्जन, सहृदय उदार प्राणियों के दर्शन हो जहाँ छल और कपट, विरोध और वैमनस्य का प्रधान्य न हो। उसके दिल में ख्याल होता है

टिप्पणी

कि जब हमें किस्से-कहानियों में भी उन्हीं लोगों से साबका है जिनके साथ आठों पहर व्यवहार करना पड़ता है तो फिर ऐसी पुस्तक पढ़ें ही क्यों? काल्पनिक स्वर्ग के निर्माताओं की यह पुरानी दलील है मनुष्य साहित्य या कला में यथार्थ की पुनरावृत्ति नहीं देखना चाहता। यह चिढ़ इसलिए नहीं कि उसकी पुनरावृत्ति मनुष्य को भाती नहीं बल्कि इसलिए कि यथार्थ का सामना करने का साहस नहीं है। शायद कोई कल्पनावादी इस बात को ईमानदारी के साथ स्वीकार न करेगा क्योंकि इससे उसकी कमजोरी साबित होती है, परन्तु प्रेमचंद मानते हैं कि यथार्थ इतना कटु है कि हमें निराशा से बचने के लिए एक काल्पनीय स्वर्ग रचने की जरूरत होती है।" यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और चूँकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है-यहाँ तक कि उज्जवल से उज्जवल चरित्र में भी कुछ दाग-धब्बे रहते हैं। इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई नजर आने लगता है। इस निराशावाद से बचने के लिए आदर्शवाद की जरूरत पड़ती है।

वास्तव में यथार्थ से भागने पर निराशा का रंग और गहरा ही हो जाता है, काल्पनिक स्वर्ग में दुबकन की आशा टिकाऊ नहीं होती। आशा तो संघर्ष से ही उत्पन्न होती है जब हम लड़ते रहते हैं और आशा करते हैं कि आगे विजयी भी होंगे। यहाँ पर आदर्शवाद को साहित्य में लाने के लिए प्रेमचंद यथार्थवाद का सहायता भी जरूरी समझते हैं लेकिन सिर्फ इसी हद तक की पढ़ने वाला भुलावे में आ जाये और यह न जाने पाए कि लेखक सरासर झूठ बोलकर उसका मन बहला रहा है। इस आदर्शवाद और यथार्थवाद के सम्मिश्रण को वह "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहते हैं।" साहित्यकार हमारे भीतर सदभावनाओं का संचार करें, इसके लिए जरूरत है कि उसके चरित्र चवेपजपअम हो तो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकाएँ बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे, बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजयनाद करते हुए निकले।" इस तरह यथार्थ की भयंकरता से प्रेमचंद समझौता करते हैं भयंकर होने पर भी जब यह दिखाया जायेगा कि आदर्शवाद उसकी गर्दन पर सवार है तो लोगों को भय दूर हो जायेगा और वे आदर्शवाद पर श्रद्धा करने लगेंगे। आदर्श और यथार्थ के संघर्ष से मिलता-जुलता हृदय और मस्तिष्क तथा कला और उपयोगिता का झगड़ा है। प्रेमचंद बुद्धिवाद से साहित्य को वैसे ही बचाना चाहते हैं जैसे उसे यथार्थवाद से। इसका कारण भी बहुत कुछ वही पुराना भय है कि बुद्धिवाद उन्हें संसार के कटु सत्यों का सामना करने के लिए बाध्य करेगा। वह कहते हैं 'सच पूछिए तो कला और साहित्य बुद्धिवाद के लिए उपयुक्त ही नहीं। साहित्य तो भावुकता की वस्तु है बुद्धिवाद की यही यहाँ इतनी ही जरूरत है कि भावुकता बेलगाम होकर दौड़ने न पाए।" साहित्य में भावुकता एक बहुत सस्ती चीज है। जिसका अभाव ही आजकल साहित्य को ऊँचा बनाता है। जो चीज मीठी-मीठी दिल को लुभाने वाल लिखी जाती है उसे बचकानी कहकर हम टाल देते हैं लेकिन प्रेमचंद का मतलब इस सस्ती भावुकता से नहीं। वे भावुकता के अंतर्गत मनुष्य की उन सभी प्रवृत्तियों को लेते हैं जो व्यक्तिगत स्वार्थ से रहित पूरी समाज के हित के लिए है। भावुकता की श्रेष्ठता दिखाने को वह एक विचित्र उदाहरण देते हैं। मान लीजिए एक स्त्री को कुछ लम्पटों ने घेर लिया और आप अकेले उसकी रक्षा नहीं कर सकते। यहाँ बुद्धिवाद कहेगा, अकेले पाँच से कैसे जीतोगे, चलो आगे चलो। लेकिन भावुकता कहेगी एक स्त्री की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है, चाहे प्राण चले जायें, लेकिन उसे इन दुष्टों के हाथ से बचाना होगा। ऐसी परिस्थिति में भावुकता मनुष्यता है, बुद्धिवाद वहाँ कायरता बन जाता है। प्रेमचंद भावुकता का सम्बन्ध हृदय से मानते हैं और मनुष्य के हृदय में सत्कर्म की प्रेरणा सवभावत: मौजूद है। इसलिए जब वह भावुकता का सहारा लेगा तो अवश्य सत्कर्म की ओर प्रेरित होगा। वास्तव में यदि वीरता का भाव हृदय से उत्पन्न होता है तो

टिप्पणी

वहीं से कायरता की भी उत्पत्ति माननी होगी। एक ही के लिए हृदय उत्तरदायी नहीं हो सकता। ऊपर के उदाहरण के विपरीत हमारे सामने बैरगियां नाला के ठगों की कथा है; वहाँ भावुकता से कथित दु:साहसी न हुए वरन् बुद्धि से काम लेकर एक-एक पर तीन-तीन मिलकर वार करने लगे और इस तरह से बुद्धि द्वारा विजयी हुए। प्रेमचंद को बुद्धिवाद से इसलिए भय नहीं है कि वह कायरता के वरन् इसलिए कि वह उनके आदर्शवाद की भावुक कल्पना को ढ़हा देता है। जब साहित्य हृदय की वस्तु हो जाती है तो उसका ध्येय भी आनन्द उत्पन्न करना रह जाता है। साहित्य से रस की सृष्टि उसका ध्येय आनंद माना है और जब उपयोगिताओं से संघर्ष हुआ है उन्होंने आनंद की ही उपयोगिता सिद्ध की है। साहित्य का आनंद ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है और उसे सत्कार्यों की ओर प्रेरित करता है। साहित्य का मुख्य ध्येय अब भी आनंद उत न करना ही है-उपयोगिता उसी के साथ गौण रूप से आती है। लेकिन साहित्य के प्रति जैसे प्रेमचंद का दृष्टिकोण आदर्शवादी ही न रह यथार्थवादी भी हुआ, वैसे ही उपयोगिता आनन्द के क्षेत्र में गौणरूप से समाई न रही वरन् उसने ही प्रमुखता से ली और आनंद गौण बन बैठा। साहित्य की सृष्टि के लिए वह आनंद की भावना को नहीं वरन् उपयोगिता की भावना को उत्तरदायी बताते हैं। 'साहित्य का जन्म उपयोगिता की भावना का ऋणी है तो चतुर कलाकार है वह उपयोगिता को गुप्त रखने में सफल होता है, जो इतना चतुर नहीं है वह उपदेशक बन जाता है और अपनी हंसी उड़वाता है।श्श साहित्य में उपयोगिता उपयोगी हो सके। उपयोगिता अपने निरावरण रूप में लोगों को चौंका देगी। इसलिए उसे आनंद के वस्त्र पहनाना जरूरी है। फिर जैसे यथार्थ और जीवन के संघर्ष को प्रेमचंद ने जोरदार शब्दों से साहित्य का धयेय घोषित किया था, वैसे ही वह साहित्य की सिद्धि आनन्द नहीं, उपयोगिता के सूत्र से करते है।

हमारे जीवन का ऐसा शायद ही कोई पहलू छूटा हो जिसकी गुत्थियों को प्रेम चेष्टा न की हो। वह भारतीय जीवन के भिन्न-भिन्न अंगों से परिचित थे और उनका-या किसी भी भारतीय साहित्यक की कृयिों में नहीं मिलता। प्रेमचन्द ने हमारे जीवन की समस्या की है। जीवन की कटुता का सामना किया है इसलिए निराशवादी न होकर जब वह हमारे सा आदर्श रखते हैं। तब रूखे से रूखे आलोचक के निकट भी आदर्शवाद क्षम्य हो जाता है। ना प्रेमचंद से सीखना है कि जीवन के कितने अंगों का विस्तृत ज्ञान उन्हें प्राप्त करना है और परिवार कम से कम समस्या को किस प्रकार यथार्थवादी ढंग से साहित्य में पेश करना चाहिए। क्योंकि आदर्शवाद उनकी कृतियों के एक ही पहलू को बिगाड़ता है वह है समस्या के एक सुंदर परिणाम निकाल वाला। परन्तु उनके अंतर में बसा हुआ यथार्थवादी समस्या की जटिलता चित्रित करने में बहुत कम मेल-मुलाहिजा करता है। जहाँ उनका आदर्शवाद दब गया है और उन्होंने बरबस परिणाम ढूँढने का प्रयन नहीं किया था। समस्या को ही सामने रखकर संतोष कर लिया है वहाँ वे अद्वितीय हैं।

1.3 प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताएँ

प्रेमचंद समाज के उस वर्ग में जन्में थे जिसे मध्य वर्ग कहा जाता है। उन्होंने मध्य वर्ग की परेशानियाँ झेली तो दूसरी तरफ उसका यह भी लाभ उठाया कि किसानों को जरा-से फासले पर से देखा, संपन्न और अभिजात स्तर का पूरा परिचय पाया और राजाओं, जमींदारों और नवाबों की झलक भी पाई। कारण है कि प्रेमचंद में निम्न-मध्य वर्ग-सुलभ ऐसी सहज सामाजिक सहानुभूति थी जिसे उन्होंने किसी सिद्धान्तवाद के आग्रह के कारण स्वीकार नहीं किया था बल्कि जो उन्हें अपने वर्ग के एक मात्र वरदान के रूप में मिला था और जिसे वरदान समझकर ही ग्रहण किया था।

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में न तो पुराने दृष्टिकोण से ही न आधुनिक मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही कहीं भी, व्यक्ति प्राधान्य पाने में समर्थ हो पाता है। उनकी छोटी कहानियों में और कुछ नहीं तो

टिप्पणी

वातावरण के ताने-बाने के रूप मे और बड़े उपन्यासों में तो सजीव अस्तित्व से युक्त होकर समूचा भारतीय समाज ही पात्रता ग्रहण कर लेता है। यह सामाजिक सहानुभूति के कारण ही तो संभव होता है कि सुमन या सोफिया सूरदास या हीरो जैसे व्यक्तियों पर भी उनका सृष्टा अपनी पूरी निर्माण-शक्ति नहीं लगाता, असंख्य गौण और विविध पात्रों तथा उनसे बने समाज के लिए भी उसके पास वही एकाग्रता और कुशलता बना रहती है।

ऐसा लगता है कि जहाँ निम्न-मध्य वर्ग का कोई वैसा प्रतिभाशाली लेखक जैसे प्रेमचद या अपने समाज से ही घृणा करने लगता उससे निकल भागने के अवसर का लाभ उठाता, वही प्रमच जीवन-स्थिति के प्रति कृतज्ञ थे उसकी कठिनाइयों से जाना पसन्द करते थे क्योंकि उसमें उन्हान १९ चुकने वाली कच्चे माल की खान पाई थी जिसके अभाव में असाधारण साहित्य-शिल्प के बावजूद, कर या उपन्यास महान नहीं बन पाते। प्रेमचंद को जीवन में ऐसे अवसर मिले थे लेकिन जान-बूझकर अभा और संघर्ष की उस स्थिति को बार-बार वरण कर लेते थे। जिसमें रह कर ही, शायद ऐसी पुस्तक जा सकती हैं जिन्हें छूने पर एक कवि के शब्दों में हम पुस्तक नहीं मनुष्य को छूते होते हैं। प्रेमच सरकार की और रजवाड़े की और सिनेमा की मिली हुई नौकरियों को भी छोड़कर और अस्वीकार कर पत्रकार और लेखन का जीवन ही आकर्षक पाया और बिताया। हम नहीं जानते हालाँकि उनके कुछ भावुक प्रशंसक यह सिद्ध करते पाए जाते हैं कि प्रेमचंद ने किसानों और मजदूरों के लिए लिखा था किन्तु यह तो सत्य है ही कि उनकी रचनाएँ उस वर्ग में बहुत ही लोकप्रिय हुई जिसके एक सदस्य स्वयं प्रेमचंद थे और जिसमें ही हिन्दी के अधिकांश पाठक थे और आज भी हैं। जहाँ तक संभावित पाठनीयता का प्रश्न है यह भी सत्य है कि थोड़ी शिक्षा पाने पर भी किसान-मजदूर उनकी पुस्तकों को उसी चाव से पढ़ेंगे जिस दिलचस्पी के साथ वह वर्ग भी अब उन्हें पढ़ता है जो कल तक हिन्दी में विशेष रूचि नहीं रखता था।

प्रेमचंद के पहले ही उपन्यास 'सेवासदन' की शिक्षित और हिन्दी-प्रेमी मध्यवर्ग में अप्रत्याशित लोकप्रियता इस बात का प्रमाण है कि इस वर्ग को उस उपन्यास में अपना जो प्रतिबिम्ब देखने को मिला था वह इसके लिए अपने को निरखने-परखने का आवश्यक साधन था। प्रेमचंद ने सेवासदन के रूप में अपने समाज विशेष रूप से मध्यवर्ग के सामने सदा सच कहने वाला दर्पण रख दिया था। यह ठीक है कि दर्पण में जो दीख रहा है वह ऐसा कुछ नहीं था जिस पर प्रतिबिंबित समाज अभिमान करने का कोई कारण पा सकता था। किन्तु यदि दर्पण में विकृत प्रतिबिंब न पड़े तो दर्पण का आकर्षण अमोघ सिद्ध होता है।

'सेवासदन' के बाद प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास है 'प्रेमाश्रम'। इसमें जमींदारी और किसानों का तो यथार्थपूर्ण वर्णन है किन्तु मध्यवर्ग का प्राय: नहीं जो नगर के वातावरण में जीता है कम या थोड़ा-बहुत जो भी उपार्जित करता है वह नौकरी करके और अपनी बुद्धि के सहारे। लेकिन इसके बाद के उपन्यास 'निर्मला' में प्रेमचंद ने मध्यवर्ग की एक सुपरिचित समस्या, वृद्ध-विवाह, उसके कारणों और विभिषिकाओं का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है और यथार्थता का इतना ध्यान रखा है कि 'सेवासदन' के जैसा सुविधाजनक उपसंहार न जोड़ कर उपन्यास को दु:खांत रहने दिया है।

'गबन' उपन्यास की मूल समस्या गहनो को लेकर खड़ी हुई आज का समाज किस तरह हमारी कमजोरियों को उभारता है और हमे शीघ्र से शीघ्र पतित होने में सहायता देता है इसका सूक्ष्म चित्रण यहाँ मिलता है। चरित्र-चित्रण में प्रेमचंदपात्र की वैयक्तिक विशेषताओं में बैठते हुए भी परिस्थितियों के अनुसार उसका उत्थान-पतन दिखाते चलते हैं। सारा व्यापार अत्यंत स्वाभाविक और मानव-सुलभ हो उठता है और पाठक पर सत्यता की छाप छोड़ता है।

टिप्पणी

मनुष्य के भावों-विचारों में किस तरह छोटी-छोटी गुत्थियाँ पड़ती और सुलझती हैं इसका चित्रण करने में प्रेमचंद में अदभुत क्षमता है। प्रेमचंद ने मनुष्य की कमजोरियों और शहजोरियों का निकट से अध्ययन किया था। यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट मालूम होता है।

कहानी में चरित्र विकास और कथानक के नियम दूसरे ही हैं सूक्ष्म मनोविज्ञान की बातें यहाँ उभरकर आती हैं और कहानी को सुंदर बना देती है। प्रेमचंद दो-चार बातों को शब्दचित्र में ऐसा सजा देते हैं कि सारा चित्र जी उठता है; रेखाचित्र को सफल बनाने के लिए जैसे उसके सभी अंगों का पूरा-पूरा बनाना आवश्यक नहीं होता केवल कुछ रेखाओं से ही वह सजीव हो उठता है। इसके साथ प्रेमचंद का छिपा हुआ हास्य चारित्रिक विशेषताओं पर व्यंग्य करता हुआ चलता रहता है।

अस्तु प्रेमचंद की लक्ष्य जिस सामाजिक संघर्ष और परिवर्तनक्रम को चित्रित करना पड़ा है। उसमें वह सफल हुए हैं 'निर्मला' 'सेवासदन' आदि लिखकर उन्होंने दिखा दिया है कि वह एक सुगठित कथा लिख सकते हैं। कहानियों में शब्द-चित्रों के साथ वह कथा-तत्व का पूरा ध्यान रखते हैं और हास्य और व्यंग्य उनके चित्रण को सजीव बनाते हैं। वार्तालाप में स्वाभाविकता ऐसी होती है कि जिस श्रेणी का व्यक्ति होता है वैसी ही उसकी भाषा भी होती है। प्रेमचंद के पात्रों की भाषा एक अध्ययन करने की व देहाती, हिन्दी, उर्द, अंग्रेजी और इनके मिश्रण से बनी अनेक प्रकार की भाषा-शैलियाँ एक या सांस्कृतिक आदान-प्रदान का इतिहास है। श्कफनश चमारों से लेकर 'शतरंज के खिलाड़ी' के बीते नवाबों तक सैंकड़ों श्रेणियों के पात्रों का स्वाभाविक भाषा में बातचीत करना समाज के अदभत ना साक्षी है। ऐसी क्षमता संसार के महत्तम साहित्यिकों में ही पाई जाती है। प्रेमचंद का गद्य देहाती भाप दृढ़ भूमि पर निर्मित हुआ है; कहावतें, मुहावरे, उपमाएँ उन्होंने वहीं से सीखी हैं, भाषा की सरलता केला भी उन्हें वहीं से प्रेरणा मिली है। प्रेमचंद की कला का रहस्य एक शब्द में उनका देहातीपन है. ग्रामीण के कारण वह समाज के हृदय में पैठकर उसके सभी तारों से सम्बन्ध स्थापित कर सके हैं। अपनी भाषा लिए, अपने चित्रण के लिए वह आवश्यकतानुसार अपने देहात के अनुभव पर निर्भर हो सकते थे और उसने उन्हें कभी धोखा नहीं दिया। देश के गरीबों के प्रति उनकी सहानुभूति, उनसे प्रगाढ़ परिचय और उनके चित्रण की सच्चाई ने ही उन्हें सफल कलाकार बनाया है।

1.4 प्रेमचंद के उपन्यास और हिन्दी आलोचना

उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है। जितने विद्वान हैं उतनी ही परिभाषाएँ हैं किन्हीं दो विद्वानों की परिभाषाएँ नहीं मिलती। इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सभी लोग सहमत हों। प्रेमचंद उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझते हैं उनके अनुसार मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। वे कला और साहित्य नियमों को बड़ी कड़ाई से जीवन-प्रसंगों से सम्बद्ध करते हैं। यानी किसी रचना के रूपबंधात्मक नियम सिर्फ जीवन की वास्तविक सामग्री से पैदा होते हैं। घटना कार्य और चरित्र की आयोजना अभिव्यक्ति के कलात्मक कौशल जीवन में निहित गति-व्यवस्था के ही प्रतिरूप होते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जीवन और दुनिया लोगों, चीजों, घटनाओं की गड्डमड्ड सत्ता मात्र नहीं है बल्कि सौंदर्यात्मक प्रश्नों और विधानों का एकमात्र स्रोत है। प्रेमचंद का समस्त साहित्य इस बात की गवाही देता है कि विचार और भाव उन परिस्थितियों के भीतर से पैदा होते हैं जिनके बीच जीवन जिया जाता है इस प्रकार विचारों और भावों की ठोस, देशकालबद्ध और तात्कालिन सत्ता होती है। यहाँ ध्यान दिया जा सकता है कि छायावादी कविता पर जिसमें कल्पना की बुनियादी भूमिका स्वीकार की गयी है और भाव तथा अनुभूतियाँ सार्वभौम के प्रत्ययवादी ढाँचे में आमतौर पर अट जाती हैं। प्रेमचंद के कथा साहित्य में कल्पना की न तो बुनियादी

टिप्पणी

भूमिका है और न तो उसकी अनुभूति प्रत्यवादी ढाँचे में आमतौर पर अँट जाती है। उन्होंने साहित्य को जवन की सच्चाई का दर्पण कहा है। लेखक की सृष्टि में प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर सर्वाधिक बल दिया है। उन्होंने लिखा है, "साहित्य केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं है। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जो हमम गति संघर्ष और बेचौनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" कहने का आवश्यकता नहीं कि कि गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करने वाले साहित्य को आज भी वैदुयिक काया में संलग्न एक शक्तिशाली वर्ग साहित्य स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। साहित्य के खरेपन की जो कसाटा प्रेमचंद ने बतायी है वही उनके उपन्यासों की संरचना का मुख्य आधार है। प्रेमचंद के उपन्यासों का घटनाप्रधान कहा जाता है और कुछ इस लहजे में कहा जाता है कि मानो यही वह कारण हो जिससे जावन की समता और गहराई उनके उपन्यासों में नहीं है। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास भी तो घटना-प्रधान र क्या उसी तरह की घटनाएँ प्रेमचंद के उपन्यासों में भी हैं, प्रेमचंद जिन और जिस तरह की घटनाओं का सृष्टि करते हैं वे आधुनिक भारतीय जीवन में यथार्थ के विशिष्ट प्रसंग हैं। "सेवासदन'' की मुख्य समस्या पर विचार करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है,ष्हमारे साहित्य में कितने नाटक, कितने उपन्यास नारी के आत्मबलिदान, उसके पति सेवा पर नहीं लिखे गये? लेकिन कितने लेखकों ने उसकी निस्सहायता, पराधीनता उसके साथ पशुओं और दासों जैसे व्यवार के पहलुओं को पहचानना, विचार, भाव और अनुभव के रूपों में घटने-वाले उत्पात को लक्षित करना था। प्रेमचंद के उपन्यासों की घटनाएँ जड़ सांस्कृतिक सामाजिक परम्पराओं और भ्रष्ट प्रशासनिक ढाँचे को तानने और खोलने वाले प्रसंग हैं। प्रेमचंद ने आधुनिक अर्थ में घटनाओं की पहचान चाहते सबसे पहले न करायी हो लेकिन जितने तीखे, सिलसिलेवार और गहराई से उनके उपन्यासों में घटनाओं की आधुनिकता प्रस्तावित है उतनी उनके बाद के बहुत सारी अनुभूतियों वाले कथाकारों में भी नहीं है।

उदाहरण के लिए 'सेवासदन' के साथ 'त्यागपत्र' को ले लिया जाए। दोनों उपन्यासों में अनमेल विवाह की घटना है। सुमन का अनमेल विवाह क्यों होता है? क्या परिस्थितियों की अनिवार्य विवशता में नहीं? किन्तु मृणाल के अनमेल विवाह के प्रसंग स्पष्ट नहीं है। दोनों के विवाहों में परिस्थितियों और प्रसंगों की स्पष्टता, अस्पष्टता बहुत महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद के लिए सुमन का अनमेल विवाह बहुत दुखद घटना है। जो उन्हें बेचौन बना देती है वह किसी भी तरह से उनके कथा-सृजन का बहाना नहीं है। वह घटना वास्तविक है। यानी प्रेमचंद के उपन्यासों में घटनाएँ कहानी का बहाना नहीं है किस्से में सिर्फ सिलसिला नहीं है बल्कि जीवन और समाज के दुखद प्रसंग है। अब तनिक मृणाल के अनमेल विवाह पर विचार कर लिया जाय। पहले तो उसके अनमेल विवाह की परिस्थितियाँ उतनी अनिवार्य और स्पष्ट नहीं हैं जितनी सुमन की। इसलिए वह घटना जीवन का कोई प्रखर प्रसंग नहीं बन पाती। हम कह सकते हैं कि वह बहुत दूर तक प्रसंगहीन घटना है तो जीवन-प्रसंगों के हीन घटनाएँ चाहे जासूसी उपन्यास में हो या दार्शनिक उपन्यास में क्या फर्क पड़ता है। मृणाल का जीवन भी कम घटना बहुल नहीं है। लेकिन घटनाएँ अपने आपमें प्रभावहीन हैं। क्योंकि मृणाल परिस्थितियों और चिन्तन की निर्मित्ति है। सुमन परिस्थितियों के भीतर से उपजने वाली पात्र है और मृणाल चिन्तनात्मक प्रणय से। घटना की अनिवार्य परिस्थिति निर्भरता ही उसे वास्तविक और आधुनिक बनाती है।

जिन उपन्यासकारों के औपन्यासिक विधान की साहित्यिकता और अनुभूति की गहराई की चर्चा की जाती है। आमतौर पर उनकी थीम बड़ी संकरी और वह भी कई बार दुहराई गयी है। उनके उपन्यासों में घटनाएँ जहाँ अन्तर्विरोधी प्रसंगों का विधान निर्मित करती है वहीं विविधता का मात्र बदलाव नहीं बल्कि एक रचनात्मक आश्य प्रदान करती है। जीवन और परिस्थितियों में कोई निश्चित पैटर्न नहीं होते।

टिप्पणी

उसके व्यापार और गति में अंतहीन विविधता होती है। इसलिए जब किसी रचना या रचनाकार में विविध ता मिलती है तो वह जीवन-व्यवस्था और अन्ततः विश्व-व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करती है। विविधता अलगाव नहीं है, परिस्थितियों, कार्यों और चरित्रों का गड्मड्ड दुनिया नहीं है वह संबंध धारणा है। वह अनेकता के बीच पारस्परिकता है। प्रेमचंद घटनाओं को कलात्मक सामग्री के रूप में इस्तेमाल करते हैं क्योंकि घटनापरक कथा-विकास उनके उपन्यासों में प्रतिफलित है असल में प्रेमचंद जिस जमाने में लिख रहे थे, उस जमाने में घटनाओं को उनके यथार्थ प्रसंगों में और समाज के विविध सम्बन्धों में पहचान लेना बहुत बड़ी क्रान्तिकारी घटना थी। उनमें विकासमान रचनात्मक विन्यास और आशय निहित थे।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की बनावट में आदर्शवादी ढाँचे की भी भूमिका है। लेकिन वह हस्तक्षेप ही है क्योंकि धीरे-धीरे उनकी ताकत आदर्शवादी ढाँचे को तोड़ डालती है उसे आदर्श और यथार्थ का समन्वय नहीं मानना चाहिए, उनके कथा-साहित्य को जीवन में आदर्शवादी और यथार्थवादी शक्तियों का तनावया अन्तर्विरोध मानना चाहिए। यद्यपि प्रेमचंद ने इन दोनों के समन्वय की बात की है लेकिन इनकी रचना का प्रभाव समन्वय में से हीं, तनाव और विरोध में से उभरता है। इस प्रकार उनके रचनात्मक विन्यास का स्वरूप विद्रोही अधिक है।

प्रेमचन्द को पढ़ते हुए लगता है कि जीवन की विविधता विस्तार और महानता के सामने लेखक बहुत छोटा है जबकि कई ऐसे गहरे लेखक हैं जिनकी महानता के सामने जीवन बहुत छोटा और मामूली लगता है। प्रेमचंद के उपन्यास की संरचना की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जीवन की विविधता और महानता की हमारी पहचान प्रखरतर बनती है।

1.5 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **साहित्य क्या है?**
2. **प्रेमचन्द का साहित्य के प्रति दुसरे दृष्टिकोण पर प्रकाश डाले।**
3. **प्रेमचन्द जी के उपन्यासों के पात्र मधयवर्गीय स्तर से अधिक सम्बंधा रखते हैं। इसका क्या कारण है?**
4. **'सांस्कृतिक अस्मिता के प्रश्न' से आप क्या समझते है?**
5. **प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताओं पर टिप्पणी करें।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **प्रेमचन्द की जीवनी पर व्याख्या किलिक करें।**
2. **प्रेमचन्द द्वारा लिखे गए उपन्यास और हिन्दी आलोचना पर विस्तृत चची किजिए कीजिए।**
3. **प्रेमचन्द के आदर्शवादी द्धप्रगतिशीलऋ विचारों की व्याख्या अपने शब्दों में करें?**
4. **'उपयोगिता' और 'आनन्द' में अंतर स्पष्ट करो।**
5. **प्रेमचन्द उपन्यास को 'मानव चरित्र का चित्रसामाप' समझते हैं। इस विषय पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।**

♦♦♦♦♦

इकाई 2

सेवासदन

संरचना

2.1 सेवासदन : परिचय
2.2 सेवासदन : अंर्तवस्तु का विश्लेषण
2.3 सेवासदन : शिल्प विआान (औपन्यासिक शिल्प)
2.4 सेवासदन की नायिका (सुमन)
2.5 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

2.1 सेवासदन : परिचय

पश्चाताप के कडुए फल कभी-न-कभी सभी को चखने पड़ते हैं लेकिन और लोग बुराई पर पश्चाताप करते हैं, दरोगा कृष्णचंद अपनी भलाईयों पर पछता रहे थे। उन्हें थानेदारी करते दार हो गए, लेकिन उन्होंने अपनी नीयत को कभी बिगड़ने न दिया था। यौवन-काल में भी जब विलास के लिए व्याकुल रहता है उन्होंने नि-स्पृह भाव से अपना कर्तव्य पालन किया था। लेकिन दिनों के बाद आज वह अपनी सरलता और विवेक पर हाथ मल रहे थे। उनकी पत्नी गंगाजली सती माली स्त्री थी। उसने सदैव अपने पति को कुमार्ग से बचाया था पर इस समय वह चिन्ता में डूबी हुई थी। उसे स्वयं संदेह हो रहा था कि वह जीवन भर की सच्चरित्रता बिल्कुल व्यर्थ तो नहीं हो गयी।

दारोगा कृष्णचंद रसिक, उदार और सज्जन मनुष्य थे। मातहतों के साथ वह भाई-चारे का सा व्यवहार करते थे। किन्तु मातहतों की दृष्टि में उनके इस व्यवहार का कुछ मूल्य न था। निर्लोभी होने पर भी दारोगाजी के स्वभाव में किफायत का नाम न था। वह स्वयं तो शौकीन न थे लेकिन अपने घर वालों को आराम देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। दरोगा जी की दो लड़कियाँ थी बड़ी लड़की सुमन और छोटी लड़की शान्ता। सुमन सुंदर, चंचल और अभिमानी थी छोटी लड़की शान्ता भोली, गम्भीर, सुशील थी। सुमन दूसरों से बढ़कर रहना चाहती थी। यदि बाजार में दोनों बहनों के लिए एक ही प्रकार की साड़ी आती तो सुमन मुँह फुला लेती थी। शान्ता को जो कुछ मिल जाता वह उसी में प्रसन्न रहती थी। ;सुमन को सोलहवाँ वर्ष लग गया था गंगाजली के साथ कृष्णचंद को भी सुमन की विवाह की चिंता होने लगी। उस पथिक की भाँति जो दिन-भर किसी वृक्ष के नीचे आराम से सोने के बाद सन्ध्या को उठे और सामने एक ऊँचा पहाड़ देखकर हिम्मत हार बैठे, दरोगा जी भी घबरा गये। वर की खोज में दौड़ने लगे कई जगहों से टिप्पणियाँ मँगवायी। वह शिक्षित परिवार चाहते थे। वह समझते थे कि ऐसे घरों में लेन-देन की चर्चा न होगी पर उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है। कृष्णचंद को अपनी ईमानदारी और सच्चाई पर पश्चाताप होने लगा। अपनी नि:स्पृहता पर उन्हें जो घमण्ड था, वह टूट गया। आखिरकार उन्होंने महंत रामदास के कृत्य पर परदा डालने के लिए उनसे रिश्वत स्वीकार कर ली। एक महीना बीत चुका था। कृष्णचन्द्र तो विवाह की तैयारियों में मग्न थे कल तिलक जान की साइत थी दरोगा जी संध्या समय थाने में मसनद लगाये बैठे थे उसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस आता हुआ दिखाई दिया। उन्हें हिरासत में ले लिया गया। कृष्णचन्द्र को पांच वर्ष की कैद मिली। रिश्वत मामला रुपया मुकदमे में खर्च हो गया। गगाजली मैके आ गयी। उसके भाई उमानाथ को सुमन के विवाह का चित लगी रहती। जहाँ पहले सम्बंध जुड़ा था वहाँ से साफ जवाब आ गया था। उमानाथ नहीं चाहते थे कि सुमन जैसी रूपवती, गुणशील, पढ़ी-लिखी लड़की का जीवन गाँवों के मुों के घर में पड़कर नष्ट न हा जा इसलिए उन्होंने शहरों में वर की खोज शुरू की। अत: उमानाथ ने सुमन का विवाह एक कारखाने में का करने वाले तीस वर्ष के दुआह व्यक्ति गजाधर प्रसाद से तय कर दिया। फागुन में सुमन का विवाह हो गया। गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोई।

सुमन सुसराल आयी तो यहाँ की अवस्था उससे भी बुरी थी मकान के नाम पर दो कोठरियाँ और एक सायबान था। सुमन के दो महीने आराम से कटे गजाधर की एक बूढ़ी बुआ घर का सारा काम काज करती थी। लेकिन गर्मियों में शहर में हैजा फैला और बुढ़िया चल बसी। गृह-प्रबंध में कुशल न होने के कारण सुमन आवश्यक और अनावश्यक खर्च का ज्ञान न रखती थी गजाधर ने सुमन को घर की स्वामिनी बना तो दिया था, पर स्वभाव से वह कृपण था सुमन का जीवन सुख से कटा था। उसे अच्छा खाने अच्छा पहिनने की आदत थी उसने अपने घर यही सीखा था कि मनुष्य जीवन में सुख भोग करना चाहिये। उसने कभी वह धर्म-चर्चा न सुनी थी। वह धर्म-शिक्षा न पायी थी जो मन में

टिप्पणी

संतोष का बीजारोपण करती है। उसका हृदय असंतोष से व्याकुल रहने लगा। ;;;गजाधर बहुत मेहनत करता था पर उसे अपनी आर्थिक दशा में कोई अंतर न दिखाई देता था। उस पर सुमन उसके सामने अपने फूटे कर्म का रोना रो-रो कर उसे और भी हताश कर देती थी सुमन के घर के सामने भोली नामक वेश्या का मकान था सुमन उसे घृणा की दृष्टि से देखती थी।

उसने सुन रखा था कि वेश्याएँ अत्यन्त दुश्चरित्र और कुलटा होती हैं वह अपने को उससे श्रेष्ठ समझती थी मैं दरिद्र सही, दीन सही पर अपनी मर्यादा पर दृढ़ हूँ किसी भलेमानुस के घर मेरी रोक तो नहीं मुझे नीच तो नहीं समझता। वह कितना ही भोगविलास करे पर उसका कहीं आदर तो नहीं होता। बस अपने कोठे पर बैठी अपनी निर्लज्जता और अधर्म का फल भोगा करे। लेकिन सुमन को शीघ्र ही मालूम हुआ कि मैं इसे जितना नीच समझती हूँ उससे वह कहीं ऊँची है। गजाधर प्रसाद के साथ उसका बर्ताव पहले से कहीं रूखा हो गया। वह उन्ही को अपनी इस दशा का उत्तरदायी समझती थी वह देर से सोकर उठती कई दिन घर में झाडू नहीं देती। कभी-कभी गजाधर को बिना भोजन किए काम पर जाना पड़ता। उसकी समझ में न आता कि यह क्या मामला है सुमन को अपना घर अच्छा न लगता चित्र हर घड़ी उचता रहता दिन भर पड़ोसियों के घर बैठी रही। एक दिन गजाधर आठ बजे लौटे तो घर का दरवाजा बन्द पाया। अँधेरा छाया हुआ था। सुमन उस समय भोली बाई के कोठे पर बैठी बातें कर रही थी। भोली ने आज उसे बड़े आग्रह करके बुलाया था सुमन इन्कार कैसे करती उसने अपने दरवाजे पर खटखटाना सुना तो घबड़ा कर उठ खड़ी हुई और भागी हुई अपने घर आयी जल्दी से किवाड खोले चटपट दीया जलाया और चूल्हे में आग जलाने लगी उसका मन अपना अपराध बोध स्वीकार कर रहा था। एकाएक गजाधर ने कुछ भाव से कहा तुम इतनी रात तक वहाँ बैठी क्या कर रही थी। क्या लाज शर्म बिल्कुल घोल कर पी ली है। सुमन बोली क्यों भोली के घर जाने में क्या हानि है उसके घर तो बड़े-बड़े लोग आते हैं। मेरी क्या गिनती है उसके घर बड़े लोग बड़े ही आये मैं अपनी स्त्री को किसी वेश्या से मेल-जोल नहीं करने दे सकता। तुम उस मौलूद के दिन जमाव देखकर धोखे में आ गयी होंगी पर यह समझ लो उनमें से कोई भी सज्जन पुरुष नहीं था। सुमन के समझ में बात आ गयी मैं क्या जानू वह कौन लोग थे धनी लोग तो वेश्याओं के दास हुआ करते हैं। यह बात भोली भी कह रही थी मुझे बड़ा धोखा हो गया। सुमन को धर्मनिष्ठा भी जाग्रत हो गयी। वह भोली पर अपनी धार्मिकता का सिक्का जमाने के लिए नित्य गंगा स्नान करने लगी। एक रामायण मँगवाई और कभी-कभी अपनी सहेलियों को अपनी कथा सुनाती। चौत्र का महीना था रामनौमी के दिन सुमन कई सहेलियों के साथ एक बड़े मन्दिर में जन्मोत्सव देखने गयी। मन्दिर के आँगन में तिल धरने की जगह न थी संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी सुमन ने देखा कि उसकी पड़ोसन भोली बैठी गा रही है। भोली के सामने केवल धन ही सिर नहीं झुकाता धर्म भी उसका कृपाकांक्षी है। धर्मात्मा लोग उसका आदर करते हैं। वही वेश्या जिसे मैं अपने धर्म पाखंड से परास्त करना चाहती थी यहाँ महात्माओं की सभा में ठाकुरजी के पवित्र निवास स्थान में आदर और सम्मान का पात्र बनी हुई है और मेरे लिए कही खड़े होने की जगह नहीं। सुमन ने अपने घर आकर रामायण बस्ते में बाँधकर रख दी गंगा स्नान से तथा व्रत से उसका मन फिर गया।

गजाधर प्रसाद जो कभी सुमन को देखकर सुमन के मुखकमल पर भौरे की तरह मँडराया करता था। अब उसकी आँखों में जलती हुई आग के समान था। वह उससे दूर-दूर रहता उसे भय था कि वह जला न दे। एक दिन वह सेठजी के यहाँ से 8 बजे रात को लौटा को क्या देखता है कि भोली बाई उसकी पर बैठी सुमन से हँस-हँस कर बातें कर रही है। क्रोध के मारे गजाधर के ओंठ फड़कने लगे। भोली नेपाल देखा तो जल्दी से बाहर निकल आयी और बोली अगर मुझे मालूम होता कि आप सेठजी

टिप्पणी

के यहाँ नौकर है तो अब तक कभी की आपकी तरक्की हो जाती। यह आज बहूजी से मालूम हुआ। सेठ जी मेरे ऊपर बड़ी निगाह रखते हैं। इन शब्दों ने गजाधर के घाव पर नमक छिड़क दिया वह मुझे इतना नीच समझती है कि मैं इसकी सिफारिश से अपनी तरक्की कराऊँगा? ऐसी तरक्की पर लात मारता हूँ उसने भोली को कुछ जवाब न दिया।

माघ का महीना था एक दिन सुमन की कई पड़ोसिन भी उसके साथ नहाने चली मार्ग में बेनी बाग पड़ता था। उसमें नाना प्रकार के जीव जन्तु पले हुए थे। पक्षियों के लिए लोहे के पतले तारों से एक विशाल गुम्बद बनाया गया था। लौटती बार सबकी सलाह हुई की बाग की सैर करनी चाहिए। सुमन बहुत देर तक वहाँ के अदभुत जीवधारियों को देखती रही अन्त में एक बेंच पर बैठ गयी। इतने में एक गाड़ी आकर चिड़ियाघर के सामने रूकी बाग के रक्षक दौड़कर गाड़ी के पट खोले। दो महिलाएँ उतरी उनमें से एक सुमन की पड़ोसन भोली थी। दोनों स्त्रियों ने बाग की सैर की और वहाँ से चली गयी तभी एक और गाड़ी आयी और उसमें से एक स्त्री बाहर आयी उसने सुमन को देखा। उस स्त्री का नाम सुभद्रा था वह सुमन के रंग-रूप बातचीत पर ऐसी मोहित हुई कि उसे अपनी गाड़ी में बैठा लिया। वकील साहब जो सुभद्रा के पति हैं कोचबक्स पर जो बैठे। गाड़ी चली सुमन को ऐसा मालूम हो रहा था कि मैं विमान में बैठी स्वर्ग को जा रही हूँ। सुभद्रा यद्यपि रूपवती न थी और उसके वस्त्राभुषण भी साधारण ही थे पर उसका स्वभाव ऐसा नम्र व्यवहार ऐसा सरल तथा विनयपूर्ण था कि सुमन का हृदय पुलकित हो गया। वह इन्हीं विचारों मग्न थी कि उसका घर आ गया। उसने सकुचाते हुए सुभद्रा से कहा गाड़ी रूकवा दीजिए मेरा घर आ गया। सुभद्रा ने गाड़ी रूकवा दी। सुमन ने एक बार भोली बाई के मकान की ओर देखा वह अपने छज्जे पर टहल रही थी दोनों की आँखे मिली भोली ने मानो कहा अच्छा यह ठाट है। सुमन ने जैसे उत्तर दिया अच्छी तरह देख लो यह कौन लोग हैं तुम मर भी जाओ तो इस देवी के साथ बैठना नसीब न हो। दूसरे दिन सुमन नहाने न गया सवेरे ही से अपनी एक रेशमी साड़ी की मरम्मत करने लगी, दोपहर को सुभद्रा की नौकरानी उसे लन आयी। सुमन महरी के साथ सुभद्रा के घर गयी और दो तीन घण्टे तक बैठी रही उसका वहाँ से उठने का जी न चाहता था। उसने अपने मायके की रत्ती-रत्ती हाल कह सुनाया पर सुभद्रा अपनी ससुराल की ही बात करती रही। दोनों स्त्रियों में मेल-मिलाप बढ़ने लगा। एक बार सुभद्रा को ज्वर आ गया। सुमन कभी उसक पास से न टली। अपने घर एक क्षण के लिए जाती और कच्चा पक्का खाना बनाकर फिर भाग आता। गजाधर को सुमन पर विश्वास न था। वह सुमन को सुभद्रा के घर जाने से रोकता पर वह कहाँ मानता फागन के दिन थे सुमन को यह चिंता हो रही थी कि होली के लिए कपड़ों का क्या प्रबन्ध करें। गजाधर का इधर एक महीने से सेठजी ने जवाब दे दिया था। उसे अब केवल १५ रुपये का ही आधार था। इसा बा उसकी माँ का स्वर्गवास होने का शोक समाचार मिला सुमन को उसका उतना शोक न हुआ जितना होना चाहिए था। अपनी सहचारियों से उसने ऐसे ही शोकपूर्ण बातें की सबकी सब उसकी मातृभक्ति की प्रशंसा करने लगी।

होली से चार दिन पदमसिंह की बैठक ने नृत्यशाला का रूप धार किया भोलीबाई अपने सामाजिक के बीच बैठी भाव बता-बता कर गीत गा रही थी। सुमन और सुभद्रा दोनों झरोखे में चिक की आड़ से यह जलसा देख रही थी। सुभद्रा को भोली का गाना फीका लगा। लेकिन सुमन ताल स्वर का ज्ञान रखती थी। सुमन सोचने लगी इस स्त्री में कौन सा जादू है वह रूपवती है इसमें संदेह नहीं मगर मैं भी तो बुरी नहीं हूँ वह साँवली है मैं गौरी वह मोटी है मैं दुबली हूँ। सुमन ने सोचा तो क्या बनाव सिंगार पर गहने कपड़े पर लोग इतने रीझे हुए हैं। यदि मैं भी ऐसा बनाव सिंगार कर तो मेरा रूप भी निखर जायेगा। अंत में वह इस परिणाम पर पहुँच पहुँची कि वह स्वाधीन है, मेरे पैरों में बेड़ियाँ हैं। उसकी दुकान खुली है। लेकिन ग्राहकों की भीड़ है मेरी दुकान बंद है इसलिए कोई खड़ा नहीं होता।

टिप्पणी

आधी रात बीत चुकी थी सभा विसर्जित हुई। लोग अपने-अपने घर गये। सुमन भी अपने घर की ओर चली। सुमन द्वार पर पहुँची तो एक बजने की आवाज आई। वह आवाज उसकी नस-नस में गूंज उठी। उसने किवाड़ की दरारों में झाँका ढेबरी जल रही थी। उसके धुंए से कोठरी भरी हुई थी। गजाधर हाथ में डंडा लिए चित पडा जोर से खर्राटे ले रहा था। सुमन का हृदय काँप उठा। किवाड खडटखटाने का साहस न हुआ। वह बाहर ही बैठ गयी सुमन की देह पर एक फटी रशमी कुरती थी। हवा तीर के समान हड्डियों में चुभ जाती हाथ-पाँव अकड़ रहे थे। चारों और तिमिर मेघ छाया हुआ था। केवल भोली बाई के कोठे से प्रकाश की रेखाएँ अँधेरी गली की तरफ दया की स्नेह-रहित दृष्टि से ताक रही थी। वह झपटकर उठी और किवाड़ खटखटाया और चिल्लाकर बोली दो घड़ी से चिल्ला रही हूँ। सुनते ही नहीं गजाधर चौंका नींद पूरी हो चुकी थी। उठकर किवाड खोल दिये सुमन ने कृत्रिम क्रोध में कहा कब से चिल्ला रही हूँ सुनते ही नहीं ठंड के मारे हाथ-पाँव अकड़ गये। गजाधर ने कहा सारी रात कहाँ रही सुमन निर्भय होकर बोली नौ बजे सुभद्रा के घर गयी थी। दावत थी वहीं से आ रही हूँ गजाधर बोला मैंने भी त्रियाचरित्र पढ़ा है। ठीक-ठीक बता नहीं तो आज जो कुछ होना है हो जायेगा। सुमन ने कातर भाव से कहा वकील साहब के घर को छोड़कर कहीं नहीं गयी। तुम्हें विश्वास न हो तो आप जाकर पूछ लो गजाधर ने लांछनायुक्त शब्दों में कहा अच्छा तो अब वकील साहब से मन मिला है। सुमन ने कहा वकील साहब को बीच में क्यों घसीटते हो। वह बेचारे तो जब तक मैं घर में रहती हूँ अन्दर कदम ही नहीं रखते। गजाधर बोला चल छोकरी मुझे न चरा तेरे हौसले बढ़ रहे हैं तेरी गुजर यहाँ न होगी। गजाधर कटुतापूर्ण स्वर से बोला नहीं, जाओगी क्यों नहीं? वहाँ ऊँची अटारी सैर को मिलेगी पकवान खाने को मिलेंगे फूलों की सेज पर सोओगी नित्य राग रंग की धूम रहेगी। सुमन जैसी सगवी स्त्री इस अपमान को सह न सकी। घर से निकालने की धमकी भयंकर इरादों को पूरा कर देती है। सुमन ने सन्दूकची उठा ली और द्वार से निकल गयी व सोचती थी। गजाधर अब भी मनाने आयेगा इसलिए वह दरवाजे के सामने चुपचाप खड़ी रही। एकाएक गजाधर ने दोनों किवाड़ बन्द कर लिये। उसने सन्दूकची आँचल में छुपा ली और पंडित पदमसिंह के घर आ पहुँची। जब पंडित जी भीतर आये तो सुभद्रा ने सारी था उनसे वहीं पंडित जी बड़ी चिन्ता में पड़े एक अपरिचित स्त्री को उसके पति से पूछे बिना अपने घर में रखना अनुचित मालूम हुआ। निश्चय किया कि चलकर गजाधर को बुलवाऊँ और समझाकर उसका क्रोध शान्त कर दूँ। इस स्त्री का यहाँ से चला जाना ही अच्छा है। सुमन को शर्मा जी से ऐसी आशा न थी। उस स्वाधीनता के साथ जो आपत्तिकाल में हृदय पर अधि कार पा जाती है अभी कल एक वेश्या के साथ बैठे फूले न समाते थे। उनके पैरों तले आँख बिछाते थे। तब इज्जत न जाती थी आज इज्जत में बट्टा लगा जाता है। भोली के द्वार पर पहुँचकर सुमन ने सोचा इसके यहाँ क्यों जाऊँ किसी पड़ोसिन के घर जाने से काम न चलेगा? इतने में भोली ने उसे देखा और इशारे से ऊपर बुलाया सुमन ऊपर चली गयी। भोली का कमरा देखकर सुमन की आँखें खुल गयी। एक बार पहले भी आयी थी। लेकिन नीचे के कमरा बेशकीमती सामानों से सजा था। सुमन यह सामान देखकर दंग रह गयी।

सुमन के चले जाने के बाद पदमसिंह के हृदय में एक आत्मग्लानि उत्पन्न हर घरजाने के लिए कपड़े पहनने लगे। तैयार होकर घर से निकले किन्तु यह संशय लगा कर मुझे उसके दरवाजे पर देख न ले माजूम नहीं गजाधर अपने मन में क्या समझे? कहीं पर मश्किल होगी। घर से बाहर निकल चुके थे लौट पड़े और कपड़े उतार दिये। जब वह दस कर करने गये सुभद्रा ने तेवर बदलकर कहा यह आज सवेरे सुमन के पीछे क्यो पड़ गये निकालना ही एक ढंग से निकालते। उस बुड्ढ़े जीतन को भेज दिया उसने उल्टी सीधी जो कुछ मुँह में आशीर बेचारी ने जीभ तक नहीं हिलायी चुपचाप चली गयी बस नादिरशाही हुक्म दे दिया इसका दोष कि होगा।

टिप्पणी

संध्या हो गयी शर्मा जी सदन के साथ सैर को निकले किन्तु बेनीबाग या कुइन्स पार्क की ओर जाकर दुर्गाकुण्ड और कान्ह जी की धर्मशाला की ओर गये उनका चित्त चिन्ताग्रस्त हो गया आँखे इधर-उधर सुमन को खोजती फिर रही थी।

गजाधर के द्वार पर पहुँचे वह अभी दुकान से लौटा था आज उसे दोपहर ही को खबर मिली थी कि शर्मा जी ने सुमन को घर से निकाल दिया लेकिन शर्मा जी को अपने द्वार पर देखकर उनका सत्कार करने को विवश होगया। खाट से उठकर उन्हें नमस्कार किया। गजाधर रोने लगा उसके मन का भ्रम दूर हो गया रोते हुए बोला महाशय इस अपराध के लिए मुझे जो सजा चाहें दें मैं गंवार मूर्ख ठहरा मैं बिट्ठल दास जी के दास ने यह आग लगायी केवल मेरा अपमान करने के लिए जनता की दृष्टि में गिराने के लिए मुझ पर यह दोषारोपण किया है। शर्मा जी घर चले गये। बिट्ठलदास ने द्वेष के कारण यहषडयन्त्र रचा है। यह विचार शर्मा जी के ध्यान में भी न आया कि सम्भव है उन्होंने जो कुछ कहा हो वह शुभ चिन्ताओं से प्रेरित होकर कहा हो और उस पर विश्वास करते हों।

महाशय बिट्ठलदास इस समय ऐसे खुश थे मानों उन्हें को सम्पत्ति मिल गयी हो। उन्हें विश्वास था कि पदमसिंह इस जरा से कष्ट से मुँह न मोडेंगे केवल उनके पास जाने की देर है।

सुमन ने एक किराये की बग्घी मँगवायी और अकेले सैर को निकली दोनों खिड़कियाँ बन्द कर दी और छावनी की तरफ दूर तक इधर-उधर ताकती चली गयी। वह कोचवान को कुइन्स पार्क का तरक चलने के लिए कहना चाहती थी कि सदन घोड़े को दौड़ाता आता दिखायी दिया। सुमन का हृदय उठल लगा ऐसा जान पड़ा मानों बरसों के बाद देखा है जी चाहा कि उसे आवाज दे लेकिन जब्त कर गया। तक आँखों से ओझल न हुआ उसे सतृष्ण प्रेम दृष्टि से देखती रही। सदन के सर्वांगपूर्ण सौंदर्य पर वह कभी इतनी मुग्ध न हुई थी।

शर्मा जी कोतूहल से बग्घी देख रहे थे उन्होंने सुमन को पहचाना नहीं आश्चर्य हो रहा था। कौन महिला इधर चली आती है सोचा कोई इसाई लेडी होगी आँखों से देखा जैसे हाथ-पांव फूल गया सुमन सिर झुकाये हुए उनके सामने आकर खड़ी हो गयी। शर्मा जी ने और भी कदम बढ़ाया जस का से भागे सुमन से यह अपमान न सहा गया। तीव्र स्वर में बोली-मैं आपसे कुछ माँगने नहीं आया है। इतना डर रहे हैं मैं आपको केवल यह कंगन देने आयी हूँ यह लीजिए। अब मैं आप ही चली जाती हूँ कहकर उसने कंगन निकालकर शर्मा जी की तरफ फेंका। यह कहकर सुमन चली गयी। शर्मा जी कुछ देर तक तो बैठे रहे फिर बेंच पर लेट गये। सुमन का एक-एक शब्द उनके कानों में गूंज रहा था। जब से सुभद्रा ने सदन पर अपने कंगन के विषय में संदेह किया था। तब से पदमसिंह उससे रूष्ट हो गये थे। इसलिए सदन का यहाँ अब जी न लगता था। शर्माजी भी इसी फिक्र में थे कि सदन को किसी तरह यहाँ से घर भेज दूं। अब सदन का चित्त भी यहाँ से उचाट हो रहा था। यह भी घर जाना चाहता था, लेकिन कोई इस विषय में मुँह न खोल सकता था। पर दूसरे ही दिन पंडित मदनसिंह के एक पत्र ने उन सबकी इच्छाएँ पूरी कर दी। उसमें लिखा था सदन के विवाह की बातचीत हो रही है। सदन को बहु के साथ तुरन्त भेज दो।

सुभद्रा यह सूचना पाकर बहुत प्रसन्न हुई सोचने लगी महीने-दो महीने चहल पहल रहेगी, गाना-बजाना होगा, चौन से दिन कटेंगे। इस उल्लास को मन में छिपा न सकी। शर्मा जी उसकी निष्ठुरता देखकर और भी उदास हो गये। मन में कहा-इसे अपने आनन्द के आगे मेरा कुछ भी ध्यान नहीं है, एक या दो महीनों में फिर मिला होगा, लेकिन यह कैसी खुशी है? बिटुलदास ने सुमन को विधवाश्रम में गुप्त रीति से रक्खा था। प्रबंधकारिणी सभा के किसी भी सदस्य को इतला न दी थी। आश्रम की विधवाओं से उसे विधवा बताया था। लेकिन अबुलवफा जैसा टोहियों से यह बात बहुत दिनों तक गुम न रही।

उन्होंने हिरिया को ढूँढ निकाला और उससे सुमन का पता पूछ लिया। तब अपने अन्य रसिक मित्रों को भी इसकी सूचना दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उन सज्जनों की आश्रम पर विशेष रीति से कृपा-दृष्टि होने लगी। कभी सेठ चिम्मनलाल आते, कभी सेठ बलभद्रदास, कभी पंडित दीनानाथ विराजमान हो जाते। इस महानुभावों को अब आश्रम की सफाई और सजावट, उसकी आर्थिक दशा, उसके प्रबन्ध आदि विषयों से अदभुत सहानुभूति हो गयी थी। रात-दिन आश्रम की शुभकामना में मग्न रहते थे। अब गृहस्थी के कामों में उनका जी न लगता। खेतों में समय पर पानी नहीं दिया गया और फसल खराब हो गयी। असामियी से लगान नहीं वसूल किया गया, वह बेचारे रुपये लेकर आते लेकिन मदनसिह को रुपया लेकर रसीद देना भारी था। कहते, भाई अभी मामा कुछ कहती तो झुडैलाकर कहते-चूल्है में जाय घर और द्वार जिसके लिए सब कुछ करता था, जब वही नहीं है तो यह गृहस्थी मेरे किस काम की है? अब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरा सारा जीवन, सारी धर्म निष्ठा सारी कर्मशीलता, सारा आनन्द केवल एक आधार पर अवलंबित थे और वह आधार सदन का था। जिस प्रकार कोई मनुष्य लोभ के वश होकर आभूषण चुरा लेता है, पर विवेक होने पर उसे देखने में भी लज्जा आती है उसी प्रकार उपेक्षा करता था। दिन-भर काम करने के बाद संध्या को उसे अपना यह व्यवहार बहुत अखरता। विशेष करके चूने के काम में उसे बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। दैनिक पत्र को पढ़ने का अवकाश न पाता था। अब वह समझता था कि पढ़ना उन लोगों का काम है जिन्हें कोई काम नहीं है, जो सारे दिन पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते हैं लेकिन उसे बालों को संवारने, हारमोनियम बजाने के लिए न मालूम कैसे अवकाश मिल जाता था। इधर एक मास से शांता ओर सुमन में बहुत मनमुटाव हो गया था। वही शांता जी विधवा आश्रम में दया और शान्ति की मूर्ति बनी हुई थी। जब सुमन को जलाने और रूलाने पर तत्पर रहती थी। उसे यह भय खाये जाता था कि सदन कहीं सुमन के जाल में न फँस जाय। वह सुमन के आचार व्यवहार को बड़ी तीव्र दृष्टि से देखती रहती थी। सदन से जो कुछ कहना होता सुमन शांता से कहती यहाँ तक कि शांता भोजन के समय भी रसोई में किसी न किसी बहाने आ बैठती थी। वह अपने प्रसवकाल से पहले सुमन को किसी भाँति वहाँ से टालना चाहती थी क्योंकि सौरीगृह में बन्द होकर वह सुमन की देखभाल न कर सकेगी। उसे और सब कष्ट सहना मंजूर था पर वह दाह न सही जाती थी।

एक दिन सुभद्रा, मामा और शांता की बाते सुनकर सुमन सोचने लगी मैं कैसी अभागन हँ मेरी सही बहन भी अब मेरी सूरत नहीं देखना चाहती। उसे कितना अपनाना चाहा पर वह अपनी न हई। मेरे मन कलंक का टीका लग गया। यह सब मेरे ही कर्मों का फल है में कैसी अंधी हो गयी थी केवल इंद्रियों के सुख के अपनी आत्मा का नाश कर बैठी। मुझे कष्ट था मैं गहने-कपड़े को तरसती थी। अच्छे भोजन तरसती थी। प्रेम को तरसती थी उस समय मुझे अपना जीवन दुखी दिखायी देता था पर वह अवस्था भी ना मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का फल होगी। हाय मेरी सुंदरता ने मेरी मिट्टी खराब की। मेरे सौंदर्य के अभिमान ने मुझे यह दिन दिखाया। वह होश में न थी गिरती-पड़ती चली जाती थी। सँभलना चाहती थी पर संभल न सकती थी। रात बीत चुकी थी। बसन्त की शीतल वायु चलने लगी। सुमन ने साड़ी लपेट ली और घुटनों पर सिर रखकर बैठ गयी। एकाएक उसकी आँखें झपक गयी। उसने देखा कि स्वामी गजानन्द मगचर्म धारण किये उसके सामने खड़े दयापूर्ण नेत्रों से उसकी ओर ताक रहे हैं। गजानन्द उसे एक अनाथालय में ले गये और उसकी देखभाल करने को कहा। सुमन ने अनाथालय का पद-भार संभाल लिया। उस अनाथालाय का नाम था श्सेवासदनश। एक दिन सुभद्रा सेवासदन आश्रम को देखने पहुंची। सुमन उससे प्रसन्नचित्त होकर मिली फिर आश्रम दिखाने लगी सुभद्रा को आश्रम देखकर प्रसन्नता हुई। सुमन अब पवित्रता की ज्योति बनकर सेवासदन को प्रकाश देती है। सेवासदन उपन्यास का सार (संक्षिप्त में)

टिप्पणी

प्रेमचन्द का उपन्यास सेवासदन दहेज प्रथा की भयानक स्थिति बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है इसमें मध्यमवर्गीय दरोगा कृष्णचंद कस्बे में अपनी ईमानदारी के लिये चर्चित हैं उनके परिवार में पत्नी गंगाजली तथा दो बेटियाँ सुमन और शांता हैं। परिस्थितियों वश मजबूर होकर सुमन की शादी के लिये रिश्वत लेने का अपराध कर देते हैं और पकड़े जाते हैं सुमन के मामा उसका विवाह एक दुहाजू बदमिजाज और अनमेल पुरुष से कर देते हैं। सुमन स्वतंत्र विचारों वाली स्त्री है। अत: उसे पति गजाधर का रोकना टोकना बिल्कुल न भाता परिणामस्वरूप गजाधर उसके चरित्र पर प्रश्न चिन्ह लगाकर उसे घर से निकाल देता है। विलासी प्रवृति के कारण सुमन वेश्या बन जाना उचित समझती है। अंत में सभी तरफ से प्रताड़ित-अपमानित होने के बाद 'सेवासदन' नामक अनाथालय का संचालन करती है।

2.2 सेवासदन : अंर्तवस्तु का विश्लेषण

सेवासदन हिन्दी का प्रथम आधुनिक उपन्यास है। आधुनिक इसलिए है कि वह अपने युग के व्यक्तिगत और सामूहिक सत्य का यथार्थ, व्यापक और संश्लिष्ट निरूपण करता है। आधुनिक इसलिए भी है कि उसमें मानव जीवन की परिस्थितिगत और मानसिक उथल-पुथल की एक ऐसी कथा है जिसे हम अपनी नाड़ी पर महसूस करते हैं जब हम सेवासदन को एक आधुनिक उपन्यास के रूप में मान्यता देते हैं तो हमें इतिहास के संदर्भो में विचारने की आवश्यकता पड़ती है। इतिहास केवल वही नहीं है जो पुस्तकों में लिखा हुआ है। इतिहास मनुष्य का कृत्य है और यह परिवर्तनमय और विकासशील है। मनुष्य इतिहास का निर्माण करता है प्रत्येक व्यक्ति इस इतिहास का एक पात्र है। लेखक भी एक व्यक्ति है इसलिए वह भी अपने युग के इतिहास का अभिन्न अंग है। उसके जीवन की कटु और मधु स्मृतियाँ उसके अवचेतन में सरक्षित रहती है और युगीन सन्दर्भो के साथ जुड़कर तथा उसकी निरीक्षण शक्ति का स्पर्श पाकर आन्दोलित हो उठती है।

सेवासदन का लेखक अपने युग की चेतना को अपने भीतर पका रहा था उसने परम्परागत नैतिकता को नकारा नहीं, हाँ उसे मध्ययुग से निकाल कर अपने युग में खड़ा कर दिया। उपन्यास को सोद्देश्य होने की उसने अवहेलना नहीं की। हाँ उसे स्वस्थ धरातल प्रदान करके एक नई दिशा जरूर दे दी। उसने अपने भीतर के यथार्थ को युगीन यथार्थ के साथ अन्तर्ग्रथित करके देखने का यत्न किया। इस प्रकार वैयक्तिक जीवन के अनुभव और सामूहिक जीवन के निरीक्षण की सहायता से उसने सेवासदन को अपने युग का एक प्रामाणिक इतिहास बना दिया।

नारी की पराधीनता और उसके टूटे कमजोर शोषित रूप के चित्रण की प्रेरणा प्रेमचंद को जहाँ अपने युग से मिली वहीं उनके वैयक्कि जीवन का योग भी उसमें कुछ कम नहीं है प्रेमचंद ने जीवन की कटु और मधुर स्मृतियों को अपनी रचनाओं में जहाँ-तहाँ स्थान दिया है सेवासदन में लेखक के जीवन का वैयक्तिक यथार्थ सामुदायिक यथार्थ के साथ धुल-मिलकर एकदम से बोल पड़ा है। यथार्थ की यह आंतरंगता ही उपन्यास की सफलता पर मुहर लगाती है।

सेवासदन की सुमन के विवाह का प्रसंग प्रेमचंद के अपने विवाह का स्मरण दिलाता है। सुमन एक गुणवती तथा रूपवती लड़की है जिसका विवाह एक दुहाजू व्यक्ति से कर दिया जाता है। धनपतराय गुणशील, शिक्षित और सुंदर लड़का है जिसकी शादी हो जाती है एक चिड़चिड़ी, अनपढ़ और अनमेल लड़की से। वहाँ शादी मामा तय करते हैं यहाँ नाना के सुझाव पर विवाह होता है। गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोई। उसे ऐसा दुख हुआ मानो किसी ने सुमन को कुएँ में धकेल दिया। अजायब लाल की निगाह जब बहु पर पड़ी तो एक आह भरकर रह गये और अपनी पत्नी से बोले लालाजी ने मेरे लड़के को कुएँ में धकेल दिया।" गजाधर की बड़ी बुआ घर का सारा कामकाज करती थी,

टिप्पणी

इसलिए सुमन आजाद थी। किन्तु फुआ के निधन से सारा बोझ सुमन पर आ पड़ा। अजायब लाल घर के जिम्मेदारियाँ संभाले हुए थे, इसलिए धनपत स्वतंत्र था पर उनके स्वर्गवास से सारा बोझ धनपत के कन्धों पर पड़ा। गजाधर ने सुमन को चरित्रहीन मानकर उसे घर से निकाल दिया। धनपतराय ने भी पत्नी को इसी दृष्टि से देखा और उसकी रामायादराय नामक संतान को किसी अन्य से उत्पन्न माना। सुमन अब पति का मुँह भी नहीं देखना चाहती थी और बिगाड़ को स्थायी समझती है। धनपतराय भी पत्नी की सूरत से बेजार है और इस वियोग को दायती मानते हैं। गजाधर पत्नी को मनाने नहीं गये धनपतराय ने भी ऐसा करने में अपना अपमान समझा। गजाधर ने घूम-घूमकर पत्नी पर कीचड़ उछाला। धनपत ने चिट्ठी-पत्री और आपस की बातचीत में पत्नी की बुराई की। गजाधर को आगे चलकर अपने इस कृत्य पर ग्लानि हुई और वह स्वामी गजानन्द बनकर परोपकार में जुट गये। धनपत को बस्ती निवासकाल में अपनी भूल का अहसास हुआ और वह प्रेमचंद के रूप में जनता के सेवक बन गये। फिर क्या था स्वामी गजानन्द और प्रेमचन्द के प्रयत्नों से सेवासदन की इमारत खड़ी हो गयी।

गजाधर स्वामी गजानन्द हो जाने पर भी एक बार भी सुमन से यह नहीं कह सके कि वह उनके साथ चलकर रहे। हाँ कथा के अन्त में स्वामी जी की ज्योति ने सुमन को ले जाकर उनकी चौखट पर खड़ा अवश्य कर दिया। धनपतराय को यह शिकायल जरूर रही कि उनकी पत्नी ने घर से जाने के बाद न चिटठी लिखी न पत्र किन्तु प्रेमचन्द के रूप में लोकहिताय सब कुछ लिखने पर भी वे पत्नी को एक चिट्ठी भी न लिख सके और जब शिवरानी देवी को उसने लिखा कि पतिदेव आकर ले जायें तो प्रेमचंद ने उत्तर दिया श्नही आयी तो मैं क्या करूँ? अन्ततोगत्वा वह प्रेमचंद का दर्शन किये बिना ही मर गई।

सेवासदन को सुमन की गजाधर की चौखट पर पहुँचा कर प्रेमचंद ने अपने आदर्श-पुरुष के स्वाभिमान को झुकने नहीं दिया। किन्तु प्रेमचन्द ने अपनी पत्नि के साथ जैसा व्यवहार किया, वैसा ही व्यवहार यदि सुमन के साथ किया गया होता और वह गजाधर के यहाँ न जाने के बजाय इधर-उधर की ठोकरें खाकर मर गई होती तो कथा यथार्थ के और भी निकट रहती है और कहीं अधिक जानदार होती। फिर भी दृष्टव्य यह है कि सतीत्य और पतिव्रत धर्म का गीत गाने वाले हिन्दू समाज सुमन जैसी पवित्र आत्मा को गजाधर की पत्नी के रूप में उसका अधिकार नहीं दिला पाता। वह उसे सेवासदन की देख-रेख के लिए चुनकर संतोष कर लेता है और दाम्पत्य जीवन के सुख से वंचित कर देता है। इस प्रकार समन कथानक के अन्त तक हमारी दया और सहानुभूति पाती रहती है। सेवासदन के मूल ने वेश्या समस्या को तलाश करना न्यास संगत न होगा। वस्तुत: कथानक का मूलाधार वह सामाजिक और सांस्कृतिक रीतियाँ हैं जिनके पथरीले पाटों के बीच में पड़कर एक अबला टूट-टूट जाती है और उस टूटी हुई नारी को या तो पतिता होना पड़ा है या पतिता होने का लांछन उसके गले मढ़ जाता है। सुमन गजाधर के घर से निकलकर पदमसिंह के यहाँ जाती है और अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए वहाँ जीवन के शेष दिन इज्जत से काट देना चाहती है। किन्तु वहाँ जाने पर भी जो निश्चित रूप से एक वेश्या का कोठा नहीं था उसके सदचरित्रा होने में संदेह किया जाने लगता है। यदि ऐसा न होता, तो पदमसिंह को और उसको लेकर शहर में इतनी बातें उड़ाई ही क्यों जाती? पदमसिंह शर्मा समाज के झूठे आरोपों के समक्ष हथियार डाल देते हैं और सुमन को अपने घर से निकल जाने के लिए मजबूर कर देते हैं।

सुमन के माता पिता कितने ही उदार, सज्जन और धर्मात्मा क्यों न हो उनकी प्रकृति में कुछ ऐसे कीटाणु भी हैं जो उन्हें अपनी आत्मा का बलिदान करने के लिए प्रेरित करते हैं। सुमन के व्यक्तित्व में भी उन कीटाणुओं में प्रवेश किया है। सुमन के माता-पिता ने उसे स्त्री-धर्म और आदर्श ग्रहस्थ-जीवन की शिक्षा कभी नहीं दी। इसलिए सुमन के व्यक्तित्व के विकास में इनके लिए कोई संस्थान नहीं बन सका। लेखक ने अपने विवेक से सुमन के जीवन-संबंधी दृष्टिकोण की असंगतियों में

टिप्पणी

प्रत्यावलोकन-विश्लेषण के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को पकड़ने का प्रयत्न किया और पाठक को कथानक के मूल में संग्रथित अमूर्त-नैतिकता को मूर्त करने की प्रेरणा दी।

2.3 सेवासदन : शिल्प विआान (औपन्यासिक शिल्प)

विधान किसी भी औपन्यासिक कृति का मूल्यांकन उसके सम्यक रूप को सामने रखकर ही किया जा सकता है। उसके विशिष्ट गुणों को पृथक करके किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में जहाँ एक ओर सुविधा हो सकती है वहीं यह निष्कर्ष घातक भी सिद्ध हो सकता है एक आलोचक यदि किस ग्रंथ की आलोचना के विशिष्ट औजारों से चीर-फाड कर देखता है। तो उसका खतरा बना रहता है कि वह दुबारा उस ग्रंथ के सम्यक रूप को कभी न देख सके। साहित्यलोचक जर्राह या शल्यकाल नहीं होता यह और बात है कि शल्यकार की दृष्टि से उसके विवेका को शक्ति मिलती है। उपन्यास के पात्र को कथावस्तु से और कथा को पष्ठभमि से सर्वथा पृथक करके देखा भी नहीं जा सकता। एक श्रेष्ठ और सफल औपन्यासिक कृति में मलत: दो तत्वों का होना आवश्यक प्रतीत होता है एक जीवन और दूसरा क्रमादर्श। यह दोनों ही तत्व एक दसरे के प्रबल रूप से जुड़े हुए हैं फिर भी एक सीमा तक पृथक हैं। किसी उपन्यास को पढ़ते समय, उसमें जो कुछ भी लिखा गया है उसे हम यदि अपनी नाड़ी पर महसूस नहीं कर सकते तो वह अन्वीक्षण योग्य भले ही हो. सफल और श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। श्रेष्ठ उपन्यास, जीवन की केवल सूचना ही नहीं देता, वह जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहता भी है। वह जीवन में एक प्रकार के क्रमादर्श की व्याख्या करता है। प्रेमचंद को जब इस तथ्य का बोध हआ तो सेवासदन के रूप में उनकी प्रथम सफल औपन्यासिक कृति प्रकाश में आई।

सेवासदन की प्रारम्भिक पंक्तियाँ ही पाठक को जीवन का अत्यधिक तीव्र और विस्तृत विवेक प्रदान करती हैं। दरोगा कृष्णचन्द्र और उनके परिवार के संबंध मे हम एकाएक बहुत कुछ जान लेते हैं। लगता है कि प्रेमचंद अपने लहजे के तीखेपन से सीधे पाठक के हृदय में उतर जाना चाहते हैं। ऐसा इसलिए लगता है क्योंकि प्रेमचंद जीवन का केवल चित्र ही नहीं उतारते, उसकी छाया और प्रकाशको भी रूपायित करते हैं। इस प्रकार वे जीवन और उसके क्रमदर्श को शब्दो के भीतर पिरो देना चाहते हैं। यह वही कलाकार कर सकता है जिसका यथार्थ की पकड़ बहुत गहरी हो।

सेवासदन के श्रेष्ठ और सफल कृति होने का कारण यह नहीं है कि उसमे वैवाहिक-समस्या पर प्रकाश डाला गया है अथवा मध्यम वर्ग की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है उसके श्रेष्ठ होने का कारण यह भी नहीं है कि वेश्या जीवन को उसमें ज्वलन्त समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है अथवा ब्रिटिश पुलिस पद्धति की उसमें बुराई की गयी है या नैतिक उपदेश देकर सुधारवादी दृष्टि का परिचय दिया गया है। किस समस्या विशेष को सामने रखकर लिख जाने वाले उपन्यास श्रेष्ठ हो भी नहीं सकता। सेवासदन की श्रेष्ठता का कारण यह है कि उसमें जीवन के पहलुओं को अनुभव की सच्चाई के पैने शीशे से तराशकर संचारित करने का यत्न किया गया है। उसमें एक प्राणयुक्त जीवन है जो अपने अस्तित्व के स्पन्दन से विद्यमान रहता है।

प्रेमचन्द अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों पर गहरी दृष्टि रखते थे। सेवासदन के रचना काल तक शुद्ध वस्तुवादी दृष्टिकोण का पूर्ण विकास नही हो सका था। इसलिए यह सोचना कि उन्होंने समस्या विशेष के मनोवैज्ञानिक कारणों की जाँच की है या नहीं? और यदि नहीं की है तो उनका दृष्टिकोण सीमित था। प्रेमचन्द के साथ अन्याय करना है। प्रेमचन्द ने अपने दायरे में रहते हुए वह सब कछ सोचा जिसे उनके बाद के विचारकों ने आगे बढ़ाया। प्रेमचंद को जहाँ कहीं भी दुहरे मापदण्डों का आभास हुआ वह उस पर चोट करते हुए आगे बढ़े।

सेवासदन का प्रारम्भ इस वाक्य से होता है – 'पश्चाताप के कड़वे फल कभी न कभी सभी को चखने पड़ते हैं। लेकिन और लोग बुराइयों पर पछताते हैं। दरोगा कृष्णचन्द अपनी अच्छाइयों पर पछता रहे थे।" पुलिस का मुकदमा राज्य व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। शासन वर्ग की नीति और नैतिकता उसका मापदण्ड है। उसका कर्त्तव्य है कि वह अपराध वृत्तियों का दमन करें और जनता की सुरक्षा करें। किन्तु जब साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिये सरकार जनता का दमन करना आवश्यक समझने लगे फिर पुलिस अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कैसे कर सकती है। जिस समाज में विलासी जमींदार और भ्रष्टाचारी नौकरशाही का प्रभाव हो वहाँ पुलिस विभाग का भ्रष्टाचारी होना अनिवार्य सा है।

दारोगा कृष्णचन्द्र पश्चाताप इसलिए करते हैं कि वह इस विभाग में रहकर भी कर्त्तव्य ओर ईमानदारी को गले से लगाये रहे। उनकी इस भल–मानसी का मातहतों की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था होता भी कैसे? उन्हें काले धन पर हाथ साफ करने का अवसर ही नहीं मिलता था। वह कहा करते थे–यहाँ हमारा पेट नहीं भरता हम इनकी भल–मानसी को लेकर क्या करें–चाहे? हमें घुड़की डाँट–डपट, सख्ती सब स्वीकार है केवल हमारा पेट भरना चाहिए। अफसर वर्ग भी कृष्णचन्द्र से खुश नहीं थे इसलिए कि वह उसकी दावते नहीं करते थे उसे तोहफे नहीं पेश करते थे। हालात से विवश होकर जब कृष्णचन्द्र ने बेटी का विवाह करने की नियत से रिश्वत ली तो उनके रिश्वत लेने की बात खुल गई। इसलिए कि उसमें से उन्होंने मुख्तार का हक नही दिया और मातहतों का विश्वास नहीं प्राप्त किया। यानि वह रिश्वत लेते और धडल्ले से लेते पर इस चोरी के माल को बाँटकर खाते तो उनकी खूब वाह–वाही होती और उन पर की आँच न आती। यह थी पुलिस विभाग की स्थिति और यह थी ब्रिटिश शासन की नैतिकता।

सेवासदन एक प्रतीकात्मक उपन्यास नहीं है जो अपने व्यक्त अर्थों से परे गढ संदर्भो का सुझाव देता हो। यह एक विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कृति भी नही है जिसकी परीक्षा के लिए एडलर युग, फायड और अन्य लेखकों के पैमाने प्रयोग किया जाय। सेवासदन का मूल्य उसके सर्वांगीण प्रभाव में निहित है जिसका एक युगीन ऐतिहासिक आधार भी है। इसकी ऐतिहासिकता इसमें विद्यमान सामाजिक–जीवन–मल्यों के पास करवट लेती है और राजनीतिक चेतना को इसके साथ सहज रूप से गुफित करके उपन्यास की प्राथमिकता पर मुहर लगाती है।

सेवासदन एक स्थायी महत्व की कला–कृति है यह एक सामाजिक–उपन्यास नहीं है जिसकी उपारेयता अपने समय और अपने युग के साथ समाप्त हो जाए। इसकी नैतिकता द्विवेदी युगीन नैतिकता प्रभासित करने की दृष्टि से नहीं करते। इसमें वर्तमान के प्रकाशन की अपूर्व क्षमता है आज के संदर्भो में इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। पाठक के लिए इसे एक "मुर्दा दस्तावेजष कहकर टाल जाना संभव नहीं है। जीवन मूल्यों में आज तेजी से विघटन हो रहा है और एक नये ढंग का समाज सिर उभारने के लिए प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में सेवासदन यदि आज हमारी कल्पना को सैर कर ले और हमारी सहानुभूति को अपने साथ जोड़ ले तो हमें स्वीकार कीना पड़ेगा कि इसमें निश्चित रूप से हमारे लिए कुछ प्रामाणिक मूल्य विद्यमान है। यदि हम इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते तो इसका अर्थ यह है कि या तो सेवासदन के साथ हमारी सहानुभूति एक ढोंग है या हम जीवन मूल्यों की दृष्टि से सेवासदन के युग में जी रहे हैं। सेवासदन एक 'युगान्तरकार', 'यथार्थ' और आधुनिक कृति है। सामाजिक कुचक्रों में पड़कर जीवन की असंगतियो की सलीब उठाए हुए इसकी नायिका 'सुमन' नारी के अस्तित्व को टूटते और बिखरते देखती है। उपन्यासकार ने इस अस्तित्व को सेवासदन के विशाल कैनवास पर अन्त तक अतीत और वर्तमन में धुली मिली सांसों को सुनने के लिए छोड़ दिया है। श्सुमनश को अपने युग में भले ही अपेक्षित सहानुभूति न मिल सकी हो पर आज पाठक की

टिप्पणी

सहानुभूति सुमन के साथ है। उपन्यास के प्रमुख पात्र उसे अंत तक सुमनबाई कहते है किन्तु पाठक के लिए वह केवल सुमन है। उसे सुमनबाई कहने वाले अपने व्यक्तित्व के खोखलेपन का परिचय होते हैं।

ये वह लोग हैं जिन्हें उसके सामने आते हुए भी लज्जा आती है वह जीवित रहकर भी संसार की ओर से मर चुकी है और सेवा ओर त्याग के उच्च आदर्शों को सीने से लगाये हुए हैं उसकी यह तपस्या समाज की एक खुली हुई पराजय है और उसका सेवासदन एक बड़ा-सा प्रश्नचिन्ह है। जिसका समाज के पास आज भी कोई उत्तर नहीं है।

2.4 सेवासदन की नायिका (सुमन)

सेवासदन एक नायिका-प्रधान उपन्यास है। किन्तु सुमन इस उपन्यास की नायिका केवल इन अर्थों में है। उपन्यास के प्रधान पात्र के रूप में उसे संस्थान मिला है और संपूर्ण कथा सूत्र उसकी चेतना से जुड़ा हआ है। अन्यथा परम्परागत अर्थों में उसे नायिका नहीं कहा जा सकता। वह न केवल भ्रष्ट और दूषित है अपित अहंमन्यता की भावना भी उसमें काफी प्रबल है जो उसे उस मार्ग पर ले जाती है जहाँ उसकी वास्तविक सखों को हनन होता है। वह पुलिस के महकमें में दारोगा कृष्णचन्द्र के यहाँ एक सम्पन्न घराने में पैदा हुई है एक सखी दाम्पत्य जीवन की हसरते दबाये हुए, आदर पाने की लालसा लिये हए समाज के प्रति विद्रोह का स्वर ऊँचा करती हुई, अपने स्वाभिमान की रक्षा का भार उठाये हुए, सामाजिक परिस्थितियों से जूझती हुई बार-बार मरते रहने के लिए जीवित रहती है। उसके दुखों और उसकी वेदनाओं की गाथा एक टूटी हुई नारी की पराधीनता की गाथा है, सामाजिक कुरीतियां में पिसने वाली अबला की कहानी है। इस कहानी में वे सभी प्रसंग जुड़े हुए हैं जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सुमन से है। वजाहिर पात्रों की खासी भीड़-भाड दिखाई पड़ती है। पर ध्यान से देखने पर प्रत्येक पात्र सुमन के जीवन की कहानी को आगे बढ़ाने में योग दे रहा है। यही दहेज-प्रथा की चर्चा इसलिए की गई है कि कृष्णचन्द्र के आदर्शों का स्वप्न टूट जाय और शिक्षित समाज के चेहरे से नकाब उतार दी जाये। महन्त रामदास औरचेतू किसान का जिक्र इसलिए हुआ है कि धर्म का मजा चख लेने के बाद लोगों के गले दबाने और रिश्वतें लेने का प्रण करने वाले दरोगा कृष्णचन्द्र को इसका अवसर मिल सके, साथ ही सामंतवादी अत्याचार के विरूद्ध पीड़ित किसान का विद्रोही स्तर भी सुना जा सके। पुलिस के महकमें पर चोट इसलिए की गई कि ताकि बताया जा सके कि इतने गन्दे महकमें में रहकर भी सुमन का पिता एक ईमानदार आदमी था। सुमन का विवाह दोहाजू गजाधर से इसलिए हो जाता है कि उसकी माँ के पास पैसे नहीं हैं जिनके दहेज की तैयारी की जा सके। भोली बाई और सुभद्रा की चर्चा इसलिए हुई है कि वे सुमन की पड़ोसिने हैं। भोली बाई और सुभद्रा इसलिए आकृष्ट होती हैं कि ऊपर से उससे घृणा करने वाले लोग उसे आदर देते हैं और ठाकुर द्वारे तक में उसके नाच का आयोजन करते हैं वह भोलीवाई की शरण में इसलिए जाती है कि उसके लिए कहीं और सिर छुपाने की जगह नहीं है। पदमसिंह शर्मा उसके कोठे पर बैठने से इसलिए चिन्तित है कि उन्होंने उसे अपने घर से निकाल दिया था और उसका गुनाह उनकी गरदन पर है। विट्ठलदास इसलिए परेशान है कि सजातीय ब्राह्मण कन्या वेश्या हो गई है सदन का परिचय इसलिए दिया गया कि सुमन की एक बहिन और भी है और सदन का विवाह सम्बन्ध उसके साथ कर दिया जाता है। बारात वापस इसलिए लौट जाती है कि वह वेश्या की बहिन से शादी कौन कर सकता है? बोर्ड के सदस्य इसलिए बिठाये गये कि सुमन को लेकर जो वेश्यासमस्या खड़ी हो गई है उसका साधारणीकरण किया जा सके। गजाधर प्रसाद को स्वामी गजानन्द इसलिए बना दिया जाता है कि समाज की वह पोल खुल सके कि सुमन के अधिक पैसे खर्च कर देने पर जब एक व्यक्ति उधार लेने के लिए निकलता है तो दर-दर की ठोकरें खाने के बाद भी पाँच रुपये का प्रबंध नहीं कर पाता और जब वहीं व्यक्ति स्वामी जी का

भेष धारण कर लेता है तो चार दिन में एक हजार रुपये का इंतजाम कर लेना भी उसके लिए आसान हो जाता है। इस प्रकार उपन्यासकार मंजिल की ओर निरन्तर आगे बढ़ता गया है किन्तु इर्द-गिर्द के वातावरण से आँखें मूंदकर नहीं चलता।

2.5 अभ्यास-प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **'सेवासदन' उपन्यास की मूल समस्या पर प्रकाश डालिये।**
2. **'दरोगा कृष्णचंद' के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें ।**
3. **गजाधार कौन थी ? उनके व्यक्तित्व पर टिप्पणी करें।**
4. **सेवासदन की नायिका 'सुमन' पर एक व्याख्या करें।**
5. **सेवासदन का प्रारम्भ किस वाक्य से होता है?**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **'सेवासदन' अंर्तवस्तु का विश्लेषण कीजिए।**
2. **'सेवासदन' एक आधुनिक तथा श्रेष्ठ कृति है । विवेचना करो।**
3. **'सेवासदन' एक नायिका प्रधाान उपन्यास है। स्पष्ट कीजिए**
4. **'सेवासदन' का कथानक प्रभावशाली किन कारणों से बना।**
5. **'सेवासदन' की कहानी लेखक के निजी जीवन से किस प्रकार मिलती है?**

♦♦♦♦♦

इकाई 3

प्रेमाश्रम

संरचना

3.1 प्रेमाश्रम उपन्यास का सार
3.2 प्रेमाश्रम और कृषि समाज
3.3 प्रेमाश्रम युगीन भारतीय समाज और प्रेमचन्द का आदर्शवाद
3.4 प्रेमाश्रम का औपन्यासिक शिल्प
3.5 ज्ञानशंकर का चरित्र
3.6 अभ्यास-प्रश्न

टिप्पणी

3.1 प्रेमाश्रम उपन्यास का सार

प्रेमाश्रम किसान के जीवन और संघर्ष की महागाथा है। इसमें ग्रामीण समाज के लोगों के सुख-दुख सपनों और आशाओं की सच्ची तस्वीर उकेरी है प्रेमाश्रम शांतिपूर्ण संघर्ष और हिंसक जुझरू तेवरों की वकालत करता है। इस मायने में जमींदार के शोषण और अत्याचार के विरूद्ध प्रेमशंकर का नेतृत्व विश्वसनीय लगता है। विधवा गायत्री उसी भारतीय नारी का प्रतीक है जो दबी-घुटी और असहाय स्थिति में पुरुष की विलासी मनोवृत्ति के गुंझलक में फंसी छटपटा रही है। यह उपन्यास मनुष्य के संघर्षशील जीवन और उसकी अस्मिता की रक्षा का पक्षधर है।

दो साल हो गए हैं। संध्या का समय है। बाबू मायाशंकर घोड़े पर सवार लखनपुर में दाखिल हुए। उन्हें वहाँ बड़ी रौनक और सफाई दिखाई दी। प्रायः सभी द्वारे पर सायबान थे। उनमें बड़े-बड़े तख्त बिछे हुए थे। अधिकांश घरों पर सुफेदी हो गई थी। फुस के झोपड़े गायब हो गए थे। अब सब घरों पर खपरैल थी। द्वारों पर बैलों के लिए पक्की चरनियाँ बनी हुई थी ओर कई द्वारों पर घोड़े बंधे हुए नजर आते थे पुराने चौपाल में पाठशाला थी और उसके सामने एक पक्का कुआ और धर्मशाला थी। मायाशंकर को देखते ही लोग अपने-अपने काम छोड़कर दौड़े और एक क्षण में सैंकड़ों आदमी जमा हो गए। मायाशंकर सुक्खु चाधरी के मंदिर पर रूके। वहाँ इस वक्त बड़ी बहार थी। मंदिर के सामने सहन में भाँति-भाँति के फूल खिले हुए थे। चबूतरे पर चौधरी बैठे हुए रामायण पढ़ रहे थे और कई स्त्रियाँ बैठी हुई सुन रही थी। मायाशंकर घोड़े से उतरकर चबूतरे पर जा बैठे।

सुखदास हकबकाकर खड़े हो गए और पूछा-सब कुशल है न? क्या अभी चले आ रहे हैं?

माया-हाँ, मैंने कहा चलूँ तुम लोगों से भेंट-भाँट करता आऊँ।

सुख-बड़ी कृपा की। हमारे धन्य भाग कि घर बैठे स्वामी के दर्शन होते हैं। यह कहकर वह लपके हुए घर में गए, एक ऊनी कालीन लाकर बिछा दी कल्से में पानी सींचा और शरबत घोलने लगे। मायाशंकर ने मुँह-हाथ धोया, शरबत पीया, घोड़े की लगाम उतार रहे थे कि कादिर खाँ ने आकर सलाम किया। माया ने कहा-कहिए खाँ साहब मिजाज अच्छा तो है?

कादिर- सब अल्लाताला का फजल है। तुम्हारे जान-माल की खैर मनाया करते हैं। आज तो रहना होगा न?

माया- यही इरादा करके तो चला हूँ।

थोड़ी देर में वहाँ गाँव के सब छोटे-बड़े आ पहुँचे। इधर-उधर की बाते होने लगी।

कादिर ने पुछा- बेटा आजकल कौंसिल में क्या हो रहा है? असामियों पर कुछ निगाह होने की आशा है या नहीं?

माया- हाँ, है। चचा साहब उनके मित्र लोग बड़ा जोर लगा रहे हैं। आशा है कि जल्द ही कुछ-न-कुछ नतीजा निकलेगा।

कादिर-अल्लाह उनकी मेहनत सफल करें और क्या दुआ दे? रोएँ-रोएँ से तो दुआ निकल रही है। काश्तकारों की दशा बहुत कुछ सुधरी है। बेटा मुझी को देखो। पहले बीस बीघे का काश्तकार था. 100 रुपये लगान देना पड़ता था। दस बीस रुपये साल नजराने में निकल जाते थे। अब जुमल २० रुपये लगान है और नजराना नहीं लगता। पहले अनाज खलिहान से घर तक न आता था। आपके चपरासी कारिंदे वहीं गला दबाकर तुलवा लेते थे। अब अनाज घर में भरते हैं और सुभीते से बेचते हैं। दो साल में कुछ नहीं तो तीन-चार सौ बचे होंगे। डेढ सौ की एक जोड़ी बैल लाए, घर की मरम्म कराई सायबान

टिप्पणी

डाला, हाँड़ियों की जगह ताँबे और पीतल के बर्तन लिए और सबसे बड़ी बात यह है कि अब किसी की धौंस नहीं। माल गुजारी दाखिल करके चुपके घर चले आते हैं। नहीं तो हरदम जान सूली पर चढ़ी रहती थी। अब अल्लाह की इबादत में भी जी लगता है नहीं तो नमाज भी बोझ मालूम होती थी।

माया–तुम्हारा क्या हाल है दुखरन भगत?

दुखरन–भैया, अब तुम्हारे इकबाल से सब कुशल है। अब जान पड़ता है कि हम भी आदमी हैं नहीं तो पहले बैलों से भी गए–बीते थे। बैल तो हर से आता है तो आराम से भोजन करके सो जाता है। यहाँ हर से आकर बैल की फिकिर करनी पड़ती थी। उससे छुट्टी मिली तो कारिंदे साहब की खुशामद करने आते। वहाँ से दस–ग्यारह बजे लौटते तो भोजन मिलता। 5 बीघे का काश्तकार था। 10 बीघे मौरूसी थे। उनके 50 रुपये लगान देता था। 5 बीघे सिकमी जोतते थे। उनके 60 रुपये देने पड़ते थे। अब 15 बीघे के कुल 30 रुपये देने पड़ते हैं। हरी–बेगारी नजर–नियाज सबसे गला छुटा। दो साल में तीन–चार सौ हाथ में हो गए। 100 रुपये में पछाँही भैंस लाया हूँ। कुछ करजा था, चुका दिया।

सुखदास–और अब तबला हारमोनियम लिया है, वह क्यों नहीं कहते? एक पक्का कुआँ बनवाया है उसे क्यों छिपाते हो? भैया यह पहले ठाकुर जी के भगत थे। एक बार बेगार में पकड़े गए तो आकर ठाकुर जी पर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमा को तोड़–तोड़ कर फेंक दिया। अब फिर ठाकुर जी के चरणों में इनकी श्रद्धा हुई है। भजन–कीर्तन का सब सामान इन्होंने मँगवाया है।

दुखरन–छिपाऊँ क्यों? मालिक से कौन परदा? यह सब उन्हीं का अकबाल तो है।

माया–यह बातें चचा जी सुनते तो फूले न समाते।

कल्लू–भैया, जो सच पूछो तो चाँदी मेरी है। रंक से राजा हो गया। पहले 6 बीघे की आसामी था, सब सिकमी 72 रुपये लगान के देने पड़ते थे उस पर हरदम गौंस मियां की चिरौरी किया करते थे कि कहीं खेत न छीन ले। 50 रुपये खाली नजराना लगता था। पियादों की पूजा अलग करनी पड़ती थी। अब कुल 9 रुपये लगान देता हूँ। दो साल में आदमी बन गया। फूस के झोपड़े में रहता था, अबकी मकान बनवा लिया है पहले हरदम धड़का लगा रहता था कि कोई कारिंदा मेरी चुगली न कर आया हो। अब आनन्द से मठी नींद सोता हूँ और तुम्हारा जस गाता हूँ।

माया (सक्खू चौधरी से)–तुम्हारी खेती तो सब मजदूरों से ही होती होगी? तुम्हें भजन–भाव से कहाँ छुट्टी?

सुक्खू–(हँसकर) भैया, अब मुझे खेती–बारी करके क्या करना है। अब तो यही अभिलाषा है कि भगवत–भजन करते–करते यहाँ से सिधर जाऊँ। मैंने अपने चालीसों बीघे उन बेचारों को दे लिए हैं जिनके हिस्से में कुछ न पड़ा था। इस तरह सात–आठ घर जो पहले मजदूरी करते थे और बेगार के मारे मजदूरी भी न करने पाते थे, अब भले आदमी हो गए। मेरा अपना निर्वाह भी भिक्षा से हो जाता है। हाँ इच्छा पूर्ण भिक्षा मिल जाती है किसी दूसरे गाँव के पेट के लिए नहीं जाना पड़ता। दो–चार साधु–संत नित्य ही आते हैं। उसी भिक्षा से उनका सत्कार भी हो जाता है।

माया–आज बिसेसर साह नहीं दिखाई देते।

सुक्खू–किसी काम से गए होंगे। अब भी वह पहले से मजे में है। दुकान बहुत बढ़ा दी है लेन–देन कम करते हैं। पहले रुपये में आने से कम ब्याज न लेते थे और करते क्या? कितने ही असामियों से कौड़ी वसूल न होती थी। रुपये मारे पड़ते थे। उसकी कसर ब्याज से निकालते थे। अब रुपये सैंकड़े ब्याज देते हैं। किसी के यहाँ रुपये डूबने का डर नहीं है। दुकान भी अच्छी चलती है। लश्करों में पहले दिवाला

टिप्पणी

निकल जाता था। अब एक तो गाँव का बल है कोई रोब नहीं जमा सकता और जो कुछ थोड़ा बहुत घाटा हुआ भी तो गाँव वाले पूरा कर देते हैं। इतने में बलराज रेशमी साफा बाँधे, मिर्जई पहने, घोड़े पर सवार आता दिखाई दिया। मायाशंकर को देखते ही बेधड़क घोड़े से कूद पड़ा और उनके चरणों को छुआ वह अब जिला-सभा का सदस्य था उसी के जलसे से लौटा आ रहा था।

माया ने मुस्कुरा कर पूछा-कहिए मेम्बर साहब, क्या खबर है?

बलराज-हुजूर की दुआ से अच्छी तरह हूँ। आप तो मजे में हैं? बोर्ड के जलसे में गया था। बहस छिड़ गई, वहीं चिराग जल गया।

माया-आज बोर्ड में क्या था?

बलराज-वही बेगार का प्रश्न छिड़ा हुआ था। खूब गर्मागर्म बहस हुई। मेरा प्रस्ताव था कि जिले का कोई हाकिम देहात में जाकर गाँववालों से किसी तरह की खिदमत का काम न लें, जैसे पानी भरना, घास छीलना, झाड़ू लगाना। जो रसद दरकार हो वह गाँव के मुखिया से कह दी जाए और बाजार भाव से उसी दम दाम चुका दिया जाए। इस पर दोनों तहसीलदार और हुक्काम बहुत भन्नाए। कहने लगे इससे सरकारी काम में बड़ा हर्ज होगा। मैंने भी जी खोलकर जो कुछ कहते बना, कहा। सरकारी काम प्रजा को कष्ट देकर और उनका अपमान करके नहीं होना चाहिए। हर्ज होता है तो हो। दिल्लगी यह है कि कई जमींदार भी हुक्काम के पक्ष में थे। मैंने उन लोगों को खूब खबर ली। अंत में मेरा प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। देखे जिलाधीश क्या फैसला करते हैं। मेरा एक प्रस्ताव यह भी था कि निर्खनामा लिखने के लिए एक सब-कमेटी बनाए, जिसमें अधिकांश व्यापारी लोग हों। यह नहीं कि तहसीलदार ने कलम उठाकर मनमाना निर्खनामा लिखकर चलता किया। यह प्रस्ताव भी मंजूर हुआ।

माया-मैं इन सब सफलताओं पर तुम्हें बधाई देता हूँ।

बलराज-यह सब आपका अकबार है। यहां पहले कोई अखबार का नाम भी न जानता या अच्छे-अच्छे पत्र भी आते हैं। सबेरे आपको अपना वाचनालय दिखाऊँगा। गाँव के लोग यथायोग २ रुपये मासिक चंदा भी दे हैं, नहीं तो पहले हम लोग मिलकर पत्र मँगवाते थे तो सारा गाँव बिट अब कोई अफसर दौरे पर आता, कारिंदा साहब चट उससे मेरी शिकायत करते। अब आपकी दया ये में रामराम है। आपको किसी दूसरे गाँव में पूसा और मुजफ्फरपुर का गेहूँ न दिखाई देगा। हम लोगों के अबकी मिलकर दोनों ठिकानों से बीच मँगवाए और डेवढ़ी पैदावार होने की पूरी आशा है। पहले यहाँका के मारे कोई कपास बोता ही न था। मैंने अपकी मालवा और नागपुर से बीज मँगवाएं और गाँव में बार दिए। खूब कपास हुई। यह सब काम गरीब असामियों के मान के नहीं है जिनको पेट भर भोजन नहीं मिलता सारी पैदावार लगान और महाजन के भेंट हो जाती है।

यहीं बातें करते-करते भोजन का समय आ पहुँचा। लोग भोजन करने गए। मायाशंकर ने भी पूरियाँ दूध में मलकर खाई, दूध पिया और वहीं लेटे। थोड़ी देर में लोग खा-पीकर आ गए। गाने-बजाने की ठहरी। कल्लू ने गाया। कादिर खाँ ने दो-तीन पद सुनाए। कल्लू ने एक नकल की। दो-तीन घंटे खूब चहल-पहल रही। माया को बड़ा आनन्द आया। उसने भी कई अच्छी चीजें सुनाई। लोग उनके स्वर माधर्य पर मुग्ध हो गए।

सहसा बलराज ने कहा-बाबूजी, आपने सुना नहीं? मियाँ फैज्जुला पर जो मुकदमा चल रहा था, उसका आज फैसला सुना दिया गया। अपनी पड़ोसिन बुढ़िया के घर में घुसकर चोरी की थी। तीन साल की सजा हो गई।

टिप्पणी

डपटसिंह–बहुत अच्छा। सौ बेंत पड़ जाते तो और भी अच्छा होता। यह हम लोगों की आह पड़ी है। माया–बिन्दा महाराज और कर्तार सिंह का भी कहीं पता है?

बलराज–जी हाँ, बिन्दा महाराज तो यहीं रहते हैं। उनके निर्वाह के लिए हम लोगों ने यहाँ का बया बना दिया है। कर्तार, पुलिस में भरती हो गया।

दस बजते–बजते लोग विदा हुए। मायाशंकर ऐसे प्रसन्न थे मानों स्वर्ग में बैठे हुए हैं।

स्वार्थ–सेवी, माया के फंदों में फंसे हुए मनुष्यों को यह शांति, यह सुख, यह आनन्द, यह आत्मोल्लास कहाँ नसीब।

3.2 प्रेमाश्रम और कृषि समाज

प्रेमाश्रम पहले महायुद्ध के बाद के दौर का उपन्यास है। यूरोप की बड़ी–बड़ी ताकतों ने युद्ध के जरिए अपना संकट हल करने की कोशिश की लेकिन युद्ध से संकट हल नहीं हुआ। गुलाम देशों की हालत और बुरी हो गई। वहाँ की जनता को और भी दबाकर रखने के लिए पश्चिमी ताकतों ने जोर–जुल्म बढ़ाया। आजादी चाहने वाली जनता को रौलट कानून और जलियाँवाला बाग मिला। लेकिन दूसरों को गुलाम बनाने वाले अब पहले जैसे ताकतवार न थे। वे अब दुनिया को मनमाने ढंग से बाँट–छूटकर लूट न सकते थे। उन्हें खासतौर से डर पैदा हो गया था सोवियत रूस से। उस देश में मजदूरों और किसानों ने जमींदारों और पूँजीपतियों का राज खत्म कर दिया है– यह खबर दुनिया के सभी देशों में फैल गई थी इसे हिन्दुस्तान की जनता ने भी सुना था। पढ़े–लिखे लोगों ने ही नहीं गाँवों के किसानों ने भी। हिन्दुस्तान के लोग अंग्रेजों की गुलामी का जुआ उतार फेंकने के लिए और भी कोशिश करने लगे।

प्रेमचन्द साहित्यकार की तटस्थता के हामी न थे। वह यह उपदेश देते थे कि अगर जन–साधारण के आंदोलन और संघों को लेकर साहित्य न रचा जाएगा तो वह अमर न होगा। उनका सिद्धान्त था–साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वह जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे। हिन्दुस्तान की बहुसंख्यक जनता किसानी करती है। इस जनता को छोड़कर औरों के बारे में लिखने से उपन्यासकार अपने देख और युग का प्रतिनिधि कैसे होता? इसलिए उन्होंने किसानों के बारे में लिखा।

सन् १९२० और १९३० के आंदोलन में किसानों के जमींदार–विरोधी संघर्ष को दबाकर रखने या उसे एकाध जगह सीमित करने की बराबर कोशिश की गई थी इन आंदोलनों की असफलता का बहुत बड़ा कारण यह भी था कि देश की बहुसंख्यक किसान जनता को अपनी मांगों के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन तभी सफल हो सकता था जब वह करोड़ों किसानों की अपनी माँगों का आंदोलन बन जाए। वह जानते थे कि किसानों के आंदोलन से राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन कमजोर न पड़ेगा बल्कि उसे विजय की मंजिल तक ले जाएगा। हिन्दुस्तान की सामंती ताकतें विदेशी प्रभुत्व का आधार थी इसलिए प्रेमचंद के लिए आजादी का मतलब था इस आधार को खत्म करना।

प्रेमचन्द का हृदय संकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था। वह जानते थे कि इंसाफ और नई जिंदगी के लिए तमाम दुनिया की आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है हिन्दुस्तान का स्वाधीनता–आंदोलन उसी का एक हिस्सा है वह हिन्दुस्तान के लोगों में एक नया भाव देख रहे थे कि दुनिया के तमाम मेहनत करने वाले लोग भाई–भाई हैं। बलराज में उन्होंने इसी नई चेतना की किरणे फूटती दिखाई हैं।

बलराज दुनिया के तमाम मेहनत करने वालों को अपना भाई समझता है। इसलिए वह खुद हिन्दुस्तान के गरीब किसानों और खेत–मजदूरों के लिए लड़ने–मरने के लिए तैयार रहता है। वह कसरत–कुश्ती का शौकीन है गाना–बजाना, दोस्तों में गपशप करना उसे पसंद है। दुनिया का अनुभव कम है इसलिए

टिप्पणी

उतावलापन उसमें ज्यादा है। वह एक नये आदर्श से प्रभावित है। जिसके अनुसार हर इंसान का इंसान की तरह का हक मिलना चाहिए। वह किसी भी तरह के अन्याय को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। वह उस लोहे की तरह है जो आग में तापकर बनने की क्षमता रखता है गौसखाँ ने जब बेदखली की धमकी दी तो मनोहर ने जवाब दिया-"बेदखली की धमकी दूसरों को दें यहाँ हमारे खेतों के मेड़ पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोएँगे।"

बलराज इसी मनोहर का बेटा है। उसने पढ़ना-लिखना भी सीखा है। अखबारों से बदलती दुनिया का हाल भी वह जानता है। डपटसिंह जब मजाक करता है-"बजराज से कहो, सरकार के दरबार में हम लोगों की ओर से फरियाद कर आए, तब मजाक में किसानों की बेबसी का छिपा हुआ भाव दोकर बलराज उत्तर देता है-"तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़तो, हो जानों काश्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है उसमें लिखा है कि रूस में काश्तकारो का ही राज है वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी पास कोई देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है काश्तकारों ने राजा की गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदुरों की पंचायत वहाँ राज करता है।

किसानों में यह मानववादी चेतना जमींदारों और किसानों हाकिमों को भयभीत कर देती है किसानों । आतकित करने के लिए वे उन पर तरह-तरह से अत्याचार करते हैं। डिप्टी का दौरा होता है तो चपरासी एक किसान के पेड़ की लकड़ियाँ उठा ले जाता है वह ठंड के दिन कैसे काटेगा, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। बकरीद मनाने के लिए कादिर मियां ने जो बकरा पाला था वह हाकिमों के है। प्रेमचंद इस बात का संकेत करते हैं कि इस जुल्म के शिकार हिन्दु-मुसलमान दोनों को दुकान से माल लूटा जाता है उसकी कमी वह किसानों से ब्याज में पूरी करता था। हाकिम नीरोगी, बूढ़े, बच्चे किसी का लिहाज नहीं। एक बूढी अपने बेटे के साथ गाड़ी से अस्पताल जारी उतार कर गाड़ी में लकड़ियाँ लादते उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता।

ज्ञानशंकर लखनपुर के आसामियों पर इजाफा लगाकर का दावा करता है। परिस्थितियाँ किसान चेतना को पैना करती है और वे अपना एका और मजबूत करते हैं और जमींदारों का मुकाबला करना ठानते हैं गाँव में ताऊन फैल जाता है लेकिन हाकिमों-जमीदारों की तरफ से कोई रियासत नहीं होती उनकी जिंदगी कड़वी हो चुकी है जब ज्ञानशंकर का भाई प्रेमशंकर डपटसिंह के पास पहुँचते है जिसका एक लड़का जाता रहा है और दूसरा जाने वाला है तो वह कहता है

"क्या मुनाफा वसूल करने आए हो? उसी से ले लीजिए जो वहाँ धरती पर पड़ा हुआ है। वह आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देगा। गौस खाँ से कह दीजिए उसे पकड़ ले जाएँ, बाँधे, मारे, में न बोलूँगा। मेरा खेती-बारी से घर-द्वार से इस्तीफा है।"

इस किसान के जिंदगी जहर का घुट बन गई। सहन करने की सामर्थ्य खो चुका है। उसका सारा आवेग उसके व्यंग्य-वचनों मे फूट पड़ता है जिसे सुनने वाला तिलमिला उठे। प्रेमचंद का व्यंग्य उपन्यासों में पात्रों का शेष, क्षोभ और प्रतिहिंसा प्रकट करने का साधन है जितना ही किसान हाथ उठाने में असमर्थ होकर मन में घुटता है उतना ही उसका व्यंग्य आँच में तपकर पैना हो जाता है। न तमाम कठिनाईयों के बावजूद गाँव वाले जीत गए। इनकी एकता के आगे सरकारी कचहरियों को झुकना पड़ा लेकिन मुकदमा हारने पर जमीदार शक्तिशाली है वह लोगों के झोपड़ी में आग लगवा देता है ताल का पानी बंद कराने की कोशिश करता है। जिन चीजों पर किसानों का हजारो साज से पंचायती हक था जमींदार उन्हें भी हड़पने की कोशिश करता है। परिस्थितियों की मार खाते-खाते किसान दुबारा जमींदार पर दावा करते हैं और जीत जाते हैं। ज्ञानशंकर किसानों को बहुत सताता है पुलिस के साथ मिलकर बहुत

टिप्पणी

से किसानों को हत्या के मामले में फँसा देता है। लेकिन उसकी मुसीबतों का अंत नहीं हुआ। प्रेमचंद एक विशाल संघर्ष को निर्मम यथार्थवादी की तरह उसके तर्कसंगत परिणाम की तरफ बढाकर ले चलते हैं। अमन और कानून की ताकतें अब भी बहुत मजबूत हैं। लखनपुर के किसान अकेले पड़ जाते हैं। किसी दूसरे गाँव में जूं तक नहीं रेंगती क्योंकि अभी उनका कोई संगठन नहीं है। शहर से उन्हें मदद नहीं मिलती क्योंकि मजदूर से उनका एका नहीं है सन् 1920 में जब प्रेमचंद ने यह उपन्यास लिखा था तब ऐतिहासिक परिस्थिति ऐसी ही था। प्रेमशंकर की प्रेम से सब झगड़े निपटाने की नीति किसानों को एक तकलीफ से भी नहीं बचा सकी।

3.3 प्रेमाश्रम युगीन भारतीय समाज और प्रेमचंद का आदर्शवाद

प्रेमचंद उन उपन्यासकारों में थे जो पेड का पत्ता देकर संतोष न करते थे बल्कि उसकी जड़े खोदकर देखते थे चाहे वह पाताल तक ही क्यों न गई हो। सामाजिक अन्यास के विष-वृक्ष की जड़ों को उन 'प्रेमाश्रम' में पूरी तरह उघाड़ दिया, शब्द-जाल और छल कपट की मिट्टी हटाकर दिखला दिया अन्याय और अत्याचार के फल किन डालों में लगते हैं और कहाँ से उन्हें खाद-पानी मिलता है।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जमींदारों-जागीरदारों के आपसी संबंध समझे बिना 'प्रेमाश्रम' की रचना नहीं हो सकती थी। प्रेमचंद ने यह समझकर उसके अध्ययन और मनन से पैदा हुई थी। इस समझ के बिना वह ज्ञानशंकर और गायत्री, ज्वाला सिंह और गौस खाँ, मनोहर और कादिर इन तरह-तरह के पात्रों को एक जगह न तो इकट्ठा कर पाते न उनके जीवन-सूत्रों को एक दूसरे से जोड़ पाते। हिन्दी में किसानों की समस्याओं पर ज्यादा उपन्यास लिखे भी नहीं गए जो लिखे भी गए हैं उनमें प्रेमचंद की सूझबूझ का अभाव है इसलिए आज तीस साल बाद भी 'प्रेमाश्रम' में नायक न होने पर खेद प्रकट किया है। उसके कथानक की शिथिलता दिखाकर प्रेमचंद को घटिया कलाकार माना है उसमें मनोविज्ञान की गहराई या तलछट न पाकर प्रेमचंद को विश्व-साहित्यकार के पद से वंचित कर दिया है। उन्हें प्रेमचंद ने एक वाक्य में उत्तर दे दिया था। "आजाद-और आदमी हूँ मसलेतों का गुलाम नहीं।" (हँस, मई 1937)

बड़े कलाकार अपने कायदे-कानून खुद बनाते हैं। प्रेमचंद भी कायदे पढ़कर उपन्यास लिखने न बैठे थे। 'प्रेमाश्रम' में वे उन किसानों की जिन्दगी की तस्वीर अत्याचार और अन्याय की कहानी सुनाना चाहते थे जिसे उपक्रम उपसंहार प्रयोजन और उत्पत्ति की चर्चा करने वाले सज्जन अक्सर भूल जाया करते थे। प्रेमचंद ने बेगार करने वाले, हल जोतने वाले प्लेग और सरकार का मुकाबला करने वाले किसानों को नायक बना दिया। मनोहर, बलराज, कादिर दुखहरण आदि इन उपन्यास के हीरो हैं। ये कई तरह के नाक हैं-गुण और अवगुण, दोनों में विभूषित। इसकी कहानी का आरंभ किसी रमणी से आँख लड़ जाने से नहीं होता और न उस कहानी का नायक-नायिका के विवाह से होता है। लखनपुर का गाँव संक्षेप में इस उपन्यास का नायक है; ज्ञानशंकर, गौस खाँ कचहरी-कानून और पुलिस की जमात खलनायक है।

हिन्दी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले लिखा न था। एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाया यह और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचंद ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को भी सुना जो करोड़ों किसानों के दिन में हो रही थी। उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपना कथा-विषय बनाया जिसे भरपूर निगाह देखने का हियाव ही बड़ो-बड़ों को न हुआ था। उन्होंने दिखलाया कि हिन्दुस्तान की साधारण जनता में साहस, धीरता ओर मनोबल के कौर-से स्रोत छिपे पड़े हैं। प्रेमचंद ने अपना कथा-विषय चुना। सदियों से पिसते हुए दासों की चेतना को, जो अब जाग रही थी और उनके हृदय में इंसान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक अदभुत साहस का काम था। साहित्य

टिप्पणी

का झण्डा लिए हुए प्रेमचंद ऐसे मार्ग पर चल पड़े जिसे पहले किसी ने तय न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण है कि उन्होंने जो साहस किया, वह दु:साहस साबित नहीं हुआ। 'प्रेमाश्रम' एक अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास के रूप में आज भी जीवित है।

'प्रेमाश्रम' किसान-जीवन का महाकाव्य है। उसमें उस जीवन का एक पहलू नहीं दिखाया गया, वह विशाल नदी की तरह है। जिसमें मूल धारा के साथ आसपास के नालों का पानी जड़ से उखड़े हुए पुराने खोखले पेड़ और खेतों का घासपात भी बहता हुआ दिखाई देता है। प्रेमचंद के किसान देवता नहीं हैं, वे मनुष्य हैं। उनमें कमजोरियाँ हैं, वे उनसे लड़ते हैं कभी जीतते हैं कभी हारते हैं। प्रेमचंद ने चरित्र का, उत्थान-पतन दिखाने में एक साहसी लेकिन अति व्यथित किसान का हृदय पढ़ने में अपनी ज्वलंत प्रतिभा का परिचय दिया है।

यह एक युग की ट्रेजेड़ी हे जब किसान पर अत्याचार बढ़े हैं उसने उनका प्रतिरोध करने की कोशिश काह लकिन सफल नहीं हो पाया। यह दुखांत परिणति एक दीर्घकालीन और संहारकारी संघर्ष के बाद हुई पा। एक तरफ लखनपुर का गाँव अपनी शक्ति बटोरता है लड़ता है परास्त होता है फिर बिखर जाता है सरा तरफ ज्ञानशंकर और कादिंदे, थानेदास और तहसीलदार, जज, वकील और पेशकारों की फौज है जो ना सारी ताकत से गांव को कुचल देना चाहती है। प्रेमचंद ने इस संघर्ष को विस्तार से चित्रित किया है और ऐसा प्रभावशाली कौशल, घटनाक्रम को सजीव कर देने की ऐसी क्षमता खद उनके कम देखी जाती है। इस संघर्ष में दोनों प्रतिद्वंदी बराबर के नहीं हैं। जमींदार और राजपा किसानों के मुकाबले में बहुत शक्तिशाली है। फिर भी पाठक की पूरी सहानुभूति लखनपुर के जिला साथ रहती है इसलिए कि वे नए जीवन के लिए एक नए हिन्दुस्तान के लिए लड़ते हैं। जहाँ तक का संबंध है उनकी कहानी में पाठक की दिलचस्पी कम नहीं होने पाती और अंत में प्रेमचंद 1920 पाठक के सामने यह निष्कर्ष रखते हैं ख़ "सत्याग्रह में अन्याय की दमन करने की शक्ति है यह भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया।

इसके बाद वही काल्पनिक समाधान है जिसने सेवासदन को कमजोर बनाया था प्रेमाश्रम समाधान और भी कमजोर है। जो प्रेमशंकर लखनपुर को एक आदर्श गाँव बना देते हैं। वह किसानों के संग के दिनों में न उन्हें संगठित कर पाते हैं न दमन और जुल्म का मुकाबला करने में उनका साथ देते हैं। वह विदेश से पढ़े हुए एक अच्छे-खासे भलेमानुष है जो सपने देख सकते हैं, लेकिन जीवन-संघर्ष की जाँच सहने में असमर्थ हैं। वह 'प्रेमाश्रम' के सबसे निर्जीव पात्रों में हैं खासकर उन तपे हुए मार खाए किसानों में मुकाबले में जिनके गाँव को वह स्वर्ग बना देते हैं। उपन्यास का अंत अस्वाभाविक ही नहीं वह उसके प्रभाव को भी कम कर देता है। जिन शक्तियों ने लखनपुर के किसानों को पीस डालने में कुछ उठा नही रखा वे सब बरकरार रहती है। उस अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता। जिसमें अंग्रेजों के दलाल किसानों की कमाई का फल कुछ खुद लूटते थे और बाकी अंग्रेज स्वामियों को भेंट कर देते थे। तब लखनपुर एक सुखी और आदर्श गाँव कैसे बन गया।

उपन्यास के काल्पनिक अंत का यही महत्व स्वीकार किया जा सकता है कि उससे प्रेमचंद की आशाएँ जाहिर होती है कि भविष्य मे यह किस तरह के गाँव चाहते थे। उससे यह जाहिर होता है कि प्रेमचंद समझते थे कि जमींदारी प्रथा खत्म हो जाए तो किसानों का जीवन इस तरह सुखी हो सकता है। यह मान लेने पर भी ज्ञानशंकर-सम्बंधी कथा को जितना विस्तार दिया गया है वह अनावश्यक ही साबित होता है और उसने उपन्यास की मूल कथा का प्रभाव काफी कम हो जाता है।

3.4 प्रेमाश्रम का औपन्यासिक शिल्प

प्रेमचंद हमे सेठ किसानों के बीच ले जाते हैं उनके अलाव, उनके खेत और ताल, उनके अखाड़े और

टिप्पणी

लावनी-ख्याल, उनके अंधविश्वास और नए जीवन के कसमसाते हुए भावांकुर-'प्रेमाश्रम' में यह सब कुछ सजीव है उसके पृष्ठों में इतिहास जी रहा है। प्रेमचंद किसानों की प्राचीन परंपरा दिखाते हैं तो यह भी कि कहाँ उनकी कड़िया टूट रही हैं। प्रेमचंद की कला इस बात में है कि वे हिन्दुस्तान के बदले हुए किसान का चित्र खींच सके हैं। घटनाएँ साधारण हैं लेकिन उससे वह अपने पात्रों का पुरानापन और नयापन, उनको पीछे ठेलने वाली और आगे बढ़ाने वाली विशेषताएँ प्रकट करते हैं। पहाड़ की तस्वीर खींचना आसान है, नदी के बहाव को चित्रित करना मुश्किल। प्रेमचंद ने यथार्थ के बहार को पकड़ लिया है। उस उन्होंने भावी पीढ़ियों के श्प्रेमाश्रमश में सुरक्षित कर दिया है।

प्रेमचंद की कला उपन्यास की चित्रमयता में है। प्रेमचंद अपने पात्रों पर मनोवैज्ञानिक लेख लिखन नहीं बैठ जाते, जैसा कि कुछ अदभुत कलाकार किया करते हैं। वह अपने पात्रों से लंबी-लंबी स्पीचे भी नहीं दिलवाते जिनमें थोथे तर्कजाल का विस्तार करके उपन्यास को वजनी बना दिया जाता है। प्रेमचंद पात्रा के घटनाओं के दृश्यों को ऐसे चित्र आँकते हैं कि पाठक उन्हें हमेशा याद रखता है और वे उसकी स्मृति में छिपे हुए उनके विचारों और कर्मों को प्रभावित करते हैं।

प्रेमचंद ने 'मनोवैज्ञानिक' कलाकारों की तरह इस उपन्यास को तर्कजाल और अपनी टीका से लाद दिया होता तो वह साधारण जनता में कभी इतना लोकप्रिय न होता। वह जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे चित्रों द्वारा ही कहते हैं। पात्रों के संवादों में तर्कजाल भरने वाले सज्जन वास्तव में अपने यथार्थ जीवन के अज्ञान को छिपाते हैं। उनका अनुभव बहुत ही सीमित और संकुचित होता है लेकिन वह उसे हिंद महासागर की तरह गहरा दिखाना चाहते हैं। प्रेमचंद में यथार्थ जीवन की गहरी जानकारी है उनके उपन्यासों में महत्वपूर्ण जीवन-दर्शन, सुलझा हुआ दृष्टिकोण और गंभीर विचार मिलते हैं।

प्रेमचंद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात में हैं कि वह समाज में देख सकते थे कि कौन-सी चीज मर रही है और कौन-सी चीज उग रही है। वह समाज को एक गतिशील क्रम के रूप में देखते हैं। यहाँ स्थिरता नही है लेकिन क्षणभंगुरता का नाम संसार नहीं है। यहाँ कुछ शक्तियाँ पतनशील हैं तो कुछ शक्तियाँ उदयशील हैं। लखनपुर के किसान उगने वाली शक्ति हैं वे निरस्त्र हैं संघर्ष में मार खा जाते हैं भयानक यातनाएँ सहते हैं अंधविश्वासों और कुसंस्कारों से पूरी तरह पीछा नहीं छुड़ा पाते, लेकिन भविष्य उन्हीं का है; समाज की उदीयमान शक्ति वही है, ज्ञानशंकर, ज्वालासिंह, गौस खाँ वगैरह भले ही शक्तिशाली दिखाई दें लेकिन उनका भविष्य अंधकारमय है। वे समाज की प्रगति को रोकने वाली मरणशील शक्ति हैं। इन दो तरह के दलों में वर्षों तक संघर्ष चलता है और उसके दौरान नई नैतिकता पुरानी सामंती संसकृति को चुनौती देती है उससे टक्कर लेती है और दृढ़ होती है।

प्रेमचंद का गंभीर चिंतन, उनके ऊँचे विचार, एक नई मनुष्यता, एक नई नैतिकता का चित्रण करने में प्रकट होते हैं जो हिन्दुस्तान के किसानों में किरण की तरह फूट रही थी। इस घटना का अंतर्राष्ट्रीय महत्व था। हिन्दुस्तान को आधार बनाकर हिन्दुस्तान के जान-माल की मदद से अंग्रेजों ने ऐसा साम्राज्य कायम किया था जिसमें सूरज न डूबता था। उस साम्राज्य के स्तंभ थे, अंग्रेजों के दलाल, भारत के राजा, जागीरदार और जमीनदार। हिन्दुस्तान के किसान उनके खिलाफ संघर्ष करके सिर्फ अपने सुखी जीवन के लिए न लड़ रहे थे बल्कि वह संसार के सभी दासों की शांति और स्वाधीनता के लिए लड़ रहे थे। प्रेमचंद हिन्दी के पहले लेखक थे जिन्होंने अंर्तराष्ट्रीय महत्व का ऐसा उपन्यास लिखा था।

प्रेमचंद की कला उनकी सजीव शब्दावली, वर्णन की काव्यमयता, उनके गद्य के वह सजीव अंश जिन्हें पाठक कविता की पंक्तियों की तरह रट लेते हैं- इन सबमें प्रकट होती है। प्रेमचन्द की कला मनोहर, बलराज, कादिर के सजीव चित्रण में प्रकट होती है जिनसे बिछुड़ने पर एक आत्मीयता के बिछोह का सा दुख होता है।

किसी समय जब प्रेमचंद ने मनोहर, बलराज और कादिर का जीवन बदल जाएगा और लखनपुर वास्तव में एक सुखी गाँव बनेगा, तब मनोहर, बलराज और कादिर की संतान प्रेमाश्रम पढ़ेगी और कहेंगी–हाँ हमारे पुरखे वीर थे; उन्होंने अन्याय के सामने सिर नहीं झुकाया; वे अपना रक्त न बहाते तो यह गाँव सुखी न होता और यह सब कहते–सोचते उनका हृदय प्रेमचंद के प्रति कृतज्ञता से भर उठेगा।

3.5 ज्ञानशंकर का चरित्र

ज्ञानशंकर जमींदार जयशंकर का बेटा है। जयशंकर को अपनी इज्जत का बड़ा ख्याल रहता है। लड़कियों का विवाह हो तो ठाठबाट से, उत्सव मनाएँ जाएँ तो धूमधाम से घर से निकले तो पालकी पर चढ़कर। लेकिन ज्ञानशंकर के लिए पैसा ही इज्जत है। वह एक नए जमाने का जमीदार है जब महायुद्ध खत्म हो चुका था और सारे हिन्दुस्तान में दमन और लूट–खसोट का दौर–दौरा था। वह अपने बाप का श्राद्ध भी करता है तो सोच–समझकर कि पैसा ज्यादा खर्च न हो जाए। अपनी रियासत का वह चाचा–ताऊ के रिश्ते भूल जाता है उसके लिए पैसे का रिश्ता ही सबसे बड़ा रिश्ता है वह को जेल भिजवाना चाहता है लेकिन जब वह बरी हो जाता है तो उसके श्रेय में हिस्सा बँटाने की है। उसका भाई अमेरिका पढ़ने गया था। जब वह लौटकर आता है तो ऊसे खुशी नहीं होती. उसे डा है कि वह जायदाद में हिस्सा माँगेगा। उसका सुसर नि:संतान है इसलिए वह उसकी जमींदारी पर लगाए हुए है। वह उसे जहर देकर मार डालने में भी आगा–पीछा नहीं करता, सुसर न मरा तो इसमें उसन दोष नहीं है। उसके एक साली है गायत्री, जिसकी अपनी जमींदारी है। ज्ञानशंकर साली और जमींदारी कर को हड़पने की काफी कोशिशें करता है।

ज्ञानशंकर अपने वर्ग का प्रतिनिधिपात्र है। वह जितना धूर्त है उतना चतुर नहीं इसलिए उसकी बहुत कम योजनाएँ सफल हो पाती है। वह जितना धन का लोभी है। उतना ही कामी भी। इसलिए उसकी कावमुकता कभी–कभी उसका बना बनाया खेल बिगाड़ देती है। वह अपना काम बनाने के लिए दु:साहस कर सकता है लेकिन वह दूसरों का चरित्र समझने में असमर्थ है। इसलिए उसे दूसरों से अपनी निंदा सुननी पड़ती है। वह कपटी, छली और दगाबाज है लेकिन उसमें हिम्मत चारों के बराबर भी नहीं है। उसकी कायरता पाठक की सहानुभूति दूर कर देती है वह जितना कायर है, उतना ही कठोर और निर्दयी भी है। वह लखनपुर के किसानों का मुख्य प्रतिद्वंदी है लेकिन उसके सामने वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता। उसे कानून और पुलिस के बैसाखियों में खड़ा रखने वाली ताकत अंग्रेजी राज की है।

प्रेमचंद के उपन्यास में ज्ञानशंकर तमाम खलपात्रों का सिरमौर है। उसके चित्रण में प्रेमचंद ने अदभुत कौशल का परिचय दिया है। कथानक को सुसंबंद्ध रखने के लिए भी वह कथाकार की बड़ी सहायता करता है।

3.6 अभ्यास–प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **'प्रेमाश्रम' में भारतीय किसानों की समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। आप इससे सहमत है?**
2. **ज्ञानशकर के चरित्र पर व्याख्या करें।**
3. **प्रेमाश्रम क्या है।**
4. **'प्रेमाश्रम युगीन भारतीय समाज'। व्याखा करें।**
5. **'कृषि समाज' को समझाऐं।**

टिप्पणी

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 'प्रेमाश्रम' किस प्रकार असहयोग आंदोलन का अंग बन गया?
2. 'ज्ञानषंकर' सभी खलपात्रों का सिरमौर, इससे आप क्या समझते हैं।
3. 'प्रेमाश्रम' एक सफल उपन्यास है फिर भी लेखक ने इसमें किसी को नायक या नायिका नही बनाया। क्या यहाँ लेखक के कथानक की शिथिलता स्पष्ट स्पष्ट होती है?
4. 'प्रेमाश्रम' की कथाशैली पर अपने विचार व्यक्त करें।
5. 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का सार अपने शब्दों में विस्तार में लिखें।

♦♦♦♦♦

इकाई 4

रंगभूमि

संरचना

4.1 रंगभूमि उपन्यास का सार
4.2 रंगभूमि पर स्वाधीनता आन्दोलन और गाँधीवाद का प्रभाव
4.3 प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताएँ
4.4 सूरदास का चरित्र
4.5 अभ्यास-प्रश्न

टिप्पणी

4.1 रंगभूमि उपन्यास का सार

रंगभूमि एक राजनीतिक उपन्यास है इसमें मुख्य पात्र सूरदास है जो भीख माँग कर अपना जीवन यापन करता है उसके पास दस बीघा जमीन है मि० जान सेवक उस जमीन पर कारखाना लगाना चाहते हैं। परन्तु सूरदास मरते दम तक गाँव की जमीन को निगल जाने वाले कारखाने का विरोध करता है सूरदास के पास संघर्ष के लिए कोई हथियार नहीं है। वह सत्य और अहिंसा के बल पर स्वार्थ में अंधे लोगों से टकराता है। गरीब अछूते और अंधे सूरदास का भावनामय रिश्ता है अपनी जमीन के साथ। वह उस जमीन पर एक कारखाने के निर्माण का डटकर विरोध करता है। वह कारखाना जो जमीन को निगलने के साथ-साथ गाँव के सीधे-सादे समाज में और भी बुराईयाँ पैदा कर सकता है। सूरदास की लड़ाई औद्योगीकरण के अंधानुकरण से है। उसूलों के लिए जोखिम उठाने वाला वह सच्चा इंसान आखिर हार जाता है। उसकी जमीन छिन जाती है। उसका सपना चूर-चूर हो जाता है पर अटल विश्वास का धनी सूरदास चुनौती को इस रूप में स्वीकारता है कि वह नहीं रहा तो क्या लड़ाई फिर भी चलती रहेगी और एक दिन सच की विजय होगी। सूरदास की यह संघर्ष-कथा वास्तव में इतनी जीवंत और ओजपूर्ण है कि पाठक के मन मस्तिष्क को तीव्र उत्तेजना से भर देती है।

इकाई 12, रंगभूमि और औद्योगीकरण की समस्या

रंगभूमि की मुख्य कथा सूरदास को केन्द्र बनाकर चलती है। सूरदास के पास लगभग दस बीघा मौरूसी जमीन है। वह स्वयं भीख माँगकर जीवन यापन करता है और उसकी जमीन मवेशियों के चरागाह और अन्य सार्वजनिक उपयोग में आती है। उपन्यास में एक दूसरे पात्र पूँजीपति जानसेवक इस जमीन पर कारखाना लगाना चाहते हैं। सूरदास अपनी जमीन बेचने को तैयार नहीं होता। जानसेवक सरकार की सहायता से सूरदास की जमीन नाममात्र के मुआवजे पर अवाप्त करा लेते हैं और वहाँ कारखाना बन जाता है फिर मजदूरों की बस्ती बनाने के लिए पूरा पाण्डपुर, जिसमें सूरदास की झोंपड़ी भी है खाली करा लिया जाता है।

पर सूरदास अपनी जमीन और झोंपड़ी यो ही नहीं छोड़ देता। इसके लिए वह घोर संघर्ष करता है और जीते जी अपनी जमीन नहीं छोड़ता। प्रेमचंद ने इस संघर्ष को भारतीय जनता और ब्रिटिश सरकार के सघष का रूख दे दिया। सूरदास की संघर्ष-कथा भारतीय मुक्ति संग्राम का प्रतीक बन गयी है।

सूरदास की संघर्ष-कथा द्वारा प्रेमचंद ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सही स्वरूप को बेनकाब का प्रयास किया है। भारत पर ब्रिटेन का आधिपत्य प्राचीन और माध्यकालीन साम्राज्यवाद न दोन आधुनिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद था। जिसका एकमात्र उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण था। इस शोषण लिए आवश्यक था कि ब्रिटिश सरकार भारत के अवशिष्ट जर्जर सामन्त वर्ग, उभरते हुए पूँजीपति वर्ग और नवशिक्षित मध्यवर्ग को अपना सहायक बनाये। इनके सामने कुछ हड्डी के टुकड़े फेंककर और उनकी पीठ थपथपाकर ही भारत की विशाल प्रकृति सम्पदा बाजार और जनश्रम का शोषण किया जा सकता था। प्रेमचंद ने भारतीय जीवन के इस यथार्थ को बहुत अच्छी तरह समझा था और इसे ही अपने उपन्यासों में प्रमुख विषय बनाया। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने ब्रिटिश सरकार और छोटे सामन्तों की सहायता से उभरते द्वारा पूँजीवाद और उसके द्वारा भारतीय आम जनता के शोषण का चित्रण प्रस्तुत किया है। जनता इस शोषण का विरोध करती है, पर इस संघर्ष में उसकी पराजय होती है जो सर्वथा स्वाभाविक है। जैसा कि हम जानते हैं कि पूँजीवाद वैज्ञानिक औद्योगिकरण की खाल ओढ़कर जनता के बीच जाता है और उसका शिकार करता है। पूँजीवाद औद्योगिकरण का मूल उद्देश्य है जनहित नहीं, नफा होता है इस कारण वह जन-विरोधी और मानवीय मूल्यों का ध्वंसक हो जाता है। 'रंगभूमि' का जानसेवक कृषि विकास में योग देने वाले यन्त्रों या बिजली का कारखाना नहीं खोलता, वह सिगरेट

का कारखाना खोलता है। पूँजीवाद ऐसे ही उद्योगों को प्राथमिकता देता है जो अधिक से अधिक नफा दे सकें चाहे उनसे जनता का कितना भी अकल्याण क्यों न हो। औद्योगिकरण से मजदूरों का आर्थिक शोषण, गाँवों का विनाश, कृषि का ह्रास, नैतिक मूल्यों का विघटन बिल्कुल स्पष्ट है। यह जनजीवन के व्यापक मूल्यों की रक्षा का प्रश्न है।

प्रेमचंद ने कृषि और छोटे उद्योगों वाली समाज व्यवस्था की परिकल्पना की थी। वह गरीबों को अमीरों की जरूरतें पूरी करने भर के लिए निर्धारित करना नहीं चाहते थे। बड़े उद्योगों की उत्पादन पद्धति गरीबों की पहुँच से परे हो जाती है। विकसित प्रौद्योगिकी में प्रभुसेवक जैसे विशेषज्ञों का महत्व बढ़ जाता है। सामान्य मजदूर की औकात घट जाती है। वह अपनी ही निर्मित वस्तुओं से विच्छिन्नता और बेगानेपन का अनुभव करने लगता है। गरीबों की संकुचित क्रयशक्ति के संदर्भ में भी भारी आधुनिक उद्योगो तथा इनमें बनने वाली महँगी वस्तुओं का कोई औचित्य नहीं है। जितना पूँजीविनेश होता है उतनी बेरोजगारी नहीं मिटती। प्रेमचंद ऐसे उद्योगों के सख्त विरोधी थे जो अन्न का उत्पादन रोककर तंबाकू जैसी नशीली चीजों का उत्पादन बढ़ाते हों। इसमें अर्थ और स्वास्थ्य दोनों की हानि थी। जानसेवक का कारखाना विकसित प्रौद्योगिकी का नतीजा था यह भारतीय अर्थव्यवस्था ही नहीं, सांस्कृतिक स्वास्थ्य के भी प्रतिकूल था।

सूरदास की नैतिकता और धर्म-भावना सांस्कृतिक स्वास्थ्य के संदर्भ में ज्यादा जागृत होती है। जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहाँ ताड़ी-शराब का भी तो प्रचार बढ़ जायेगा। कसंबियाँ भी तो आकर बप जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजदूरी की लालच में दौड़ेंगे। दिहातों की लड़कियाँ, बहुएँ मजूरी करने आयेंगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी।

सूरदास पूँजीवादी अप-संस्कृतिक के प्रति चिंता प्रकट करता है और सांकेतिक स्तर पर बतलाना चाहता है कि कृषि-व्यवस्था को विकसित करने के स्थान पर पूँजीवाद के नाम पर बडे आधुनिक उद्योगा एव विकसित टेक्नालाजी की वकालत करना प्रगतिशीलता नहीं है। सूरदास सामयंतवादी अर्थव्यवस्थाका कायल नहीं है। वह पूँजीवाद का विरोध करता है एक मानवीय और जनवादी समाज-व्यवस्था की रचना के उददेश्य से। वह मजदूरी का नहीं, विलगाव एवं अपसंस्कृति उत्पन्न करने वाले बृहद् औद्योगिक व्यवस्था का विरोधी है क्योंकि यह गरीब कृषकों की लूट के माल में स्थापित होता है। सूरदास की नैतिकता विकसित प्रौद्योगिकी की विरोधी और जनवादी कृषि सभ्यता की पक्षधर है। ढोर चराने की जमीन जो एक की नहीं सबकी है, इसका प्रतीक है।

सूरदास का मत है कि वहाँ कारखाना बनने पर ग्रामीण जीवन की सरलता नष्ट होकर अवांक्षित औद्योगिक ह्राशील तथाकथित सभ्यता का विकास होगा। औद्योगिकरण के विरूद्ध उसकी धारण बहुतों को विचित्र लग सकती है। फिर भी उस युग में ग्रामीण समाज और उद्योगपति के मध्य अपरिचय और अस्वीकृति का जो भाव सविस्तार उपन्यास में दर्शाया गया है वह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं। आज देश में यगान्तर हो जाने पर भी बड़े-बड़े बाँधों और उद्योगों के फैलाव को ध्यान में रखकर विरोधी आंदोलनों की गँज समाज में आए दिन सुनाई पड़ती है। इसका प्रमुख कारण है, उद्योगपतियों और उनकी सहायक सरकार का उजड़ने वाले लोगों के प्रति नितान्त, अवहेलना और उपेक्षा का भाव। वे उन्हें उनके ही हाल पर छोड देना पर्याप्त समझते हैं। उनके पुर्नवास या बेहतरी के लिए कुछ भी सोचना-करना उद्योगों का सरकारी तन्त्र के कार्यक्षेत्र से बाहर का विषय बना रहता है। तब और अब दोनों ही जमानों में उजड़ने वाले जन की पीड़ा की कथा अधिक बदली नहीं है।

टिप्पणी

4.2 रंगभूमि पर स्वाधीनता आन्दोलन और गाँधीवाद का प्रभाव

रंगभूमि एक राजनीतिक उपन्यास है। राजनीतिक उपन्यास लिखने के लिए राजनीतिक यथार्थ और उसकी जटिलताओं की अच्छी जानकारी और समझ नितान्त आवश्यक है। रंगभूमि का रचनाकाल अक्टूबर, 1922 से अगस्त, 1924 के बीच है। इस समय तक आते-आते जहाँ एक तरफ ब्रिटिश शासन की जड़ें बहुत मजबूत हो चुकी थी। वहाँ दूसरी तरफ उसके खिलाफ स्वाधीनता संग्राम भी तेज होने लगा था। १९२० ई० में ही गाँधीजी ने मोतीलाल नेहरु, देशबन्धु चित्तरंजन दास और लाला लाजपत राय के सहयोग से सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ कर दिया था। इस आन्दोलन के कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे थे; स्वदेशी का प्रचार, विदेशी वस्तुओं तथा सरकारी स्कूल-कॉलेजों और सरकारी नौकरियों का परित्याग, अदालतों तथा कौंसिलों का बहिष्कार, राष्ट्रीय विद्यालयों महाविद्यालयों की स्थापना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता कायम करना आदि। इसे सफल बनाने के लिए गाँधीजी ने सारे देश का व्यापक दौरा किया। इसी सिलसिले में ८ फरवरी १९२१ को गोरखपुर में गाँधीजी का शोषण हुआ और १५ फरवरी १९२१ को प्रेमचंद ने अपनी लगभग २१ वर्षों की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। जैसा कहा जा चुका है, रंगभूमिश का रचनाकाल १९२२-२४ ई० है और इसमें प्रेमचंद ने अपने समय के राजनीतिक यथार्थ का चित्रण उसकी समस्त जटिलता, गहराई और व्यापकता में किया है। उल्लेखनीय है कि प्रेमचंद पुल्लमखुल्ला अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत नहीं करते कदाचित् उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ मानसिकता इनके अनुकूल नहीं थी। गाँधीजी द्वारा १९२० में चलाये गये सत्याग्रह आन्दोलन या प्रस्तावित सविनय अवज्ञा आंदोलन को उनके तहत अपनाये गये कार्यक्रमों को प्रेमचंद उसी रूप में चित्रित रत रंगभूमि के तीसरे परिच्छेद में एक -सेवा समिति का चित्र प्रस्तुत किया गया है। जिसके, सरक्षक, नीति-निर्धारक रानी जाह्नवी, कुंवर भरत सिंह का पुत्र विनय सिंह है। आरम्भ में सेवा समिति का उद्देश्य रखा गया है, मेले-ठेले में यात्रियों की सहायता करना, कोई दुर्घटना हो जाने पर पीड़ितों की सहायता करना। किसी भी कल्याणधर्मी राज्य में ये कार्य सरकार के होते हैं पर ब्रिटिश सरकार इसे अपना उत्तरदायित्व नहीं मानती थी। सरकार इस उद्देश्य से स्थापित गैर सरकारी संस्थाओं पा: प्रतिबन्ध तो नहीं लगाती थी पर उन्हें संदेह की दृष्टि से अवश्य देखती थी। सरकार को रहती थी किस इस प्रकार की संस्थाएँ कहीं राजनैतिक रूप न ले लें। जाहिर है कि साहित्य में संस्थाओं के चित्रण पर भी कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं था। अत: प्रेमचंद को राजनीतिक विचारों के लि तथा उनकी अनुभूतियों के चित्रण के लिए यदि मार्ग सुकर और व्यावहारिक लगा। यह महत्वपूर्ण बात है कि प्रेमचंद ने रानी जलावी और कुँवर भरत सिंह द्वारा स्थापित श्सेवा समीतिश को समकालीन राजनीतिक जीवन के अंकन का बहाना भर बनाया है। इस समिति का अपना गीत है जो विशेष अवसरों पर सामहिक रूप से गाया जाता है। कवित्व की दृष्टि से श्रंगभूमिश का यह गीत बहुत कमजोर है पर प्रेमचंद के उददेश्य का स्पष्टीकरण इससे बहुत अच्छी तरह हो जाता है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं :

''शांति समर में कभी भूलकर धर्य नहीं खोना होगा,
वज्र प्रहार भले सिर पर हो किन्तु नहीं रोना होगा।
अरि से बदला लेने का मन-बीज नहीं बोना होगा,
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा।
देश-दाग की रुधिर वारि से हर्षित हो धोना होगा,
देशकार्य की भारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
आँखें लाल, भवें टेढी कर, क्रोध नहीं करना होगा।
बलिदेवी पर कुछ हर्ष से चढ़कर कर-करना होगा,

टिप्पणी

होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा,
मातृभूमि के लिए जगत मे जीना और मरना होगा।''

इस गीत में शान्ति समर में धैर्य न खोने, मातृभूमि के लिए जीने ओर मरने, पराधीनता के कलंक को रुधिर वारि से धोने, हिंसा-मार्ग न अपनाने, शत्रु से बदला देने का भाव मन में न रखने आदि का स्पष्ट कथन है, जो श्सेवासमितिश के घोषित उद्देश्य से बहुत अलग हटकर है और प्रेमचंद की असली लक्ष्य को संकेतिक करता है इसमें गाँधीवादी तरीके से आजादी की लड़ाई का बिल्कुल स्पष्ट संकेत है।

कथाकार नये-नये प्रसंगों की सृष्टि करके सरकार के विरूद्ध जनता के आक्रोश और विद्रोह तथा सरकार द्वारा उसके दमन का चित्रण करता है। एक दिन क्लार्क की मोटर से दबकर एक आदमी की मृत्यु हो जाती है। इस पर लोगों की भीड़ क्लार्क की मोटर को घेर लेती है और क्लार्क को आज्ञा देने पर लो लोग नहीं हटते तो वह जनता पर गोली चला देता है जिससे एक आदमी की मृत्यु हो जाती है। पर इसस जनता भयभीत नहीं होती। उत्तेजित भीड़ क्लार्क का बंगला घेर लेती है। इसका वर्णन कथाकार निम्नलिखित शब्दों में करता है।

"जब राजभवन के निकट पहुँचे तो इतनी भीड़ देखी की एक-एक कदम चलना मुश्किल हो गया और भवन से एक गोली के टप्पे पर तो उन्हें विवश होकर रूकना पड़ा। सिर-ही-सिर दिखायी देते या राजभवन के सामने एक बिजली की लालटेन जल रही थी और उसके उज्जवल प्रकाश में हिलता, मचलता, रूकता, ठिठकता हुआ जन-प्रवाह इस तरह भवन की ओर चला जा रहा था। मानों उसे निगर जायेगा। भवन के सामने सिपाहियों की एक कतार संगीनें चढ़ाये, चुपचाप खड़ी थी।''

इस जनसमूह का नेता वीरपाल है और उसकी माँग मात्र इतनी है कि भविष्य में ऐसी दुर्घटनाओं के लिए अपराधी को दण्ड दिया जाये।सोफिया भीड़ को सम्बन्धित कर रही है। इसी बीच भीड़ में से कोई व्यक्ति उस पर पत्थर चला देता है। जिससे वह घायल हो जाती है। इस पुलिस भीड़ पर गोली चार्ज कर देती है। भीड़ तो तितर-बितर हो जाती है पर वीरपाल सोफिया का अपहरण कर ले जाता है। इसके बाद सरकार का जो दमन-चक्र चलता है उसके चित्रण के बहाने उपन्यासकार ने ब्रिटिश शासन-काल में स्वाधीनता-आंदोलन के दमन का अंकन किया है "संदेह मात्र में लोग फॉस दिये जाते थे और उनको कठोरतम यातनाएँ दी जाती थी साक्षी और प्रमाण की कोई मर्यादा न रह गयी थी। इन अपराधियों के भाग्य निर्णय के लिए एक अलग न्यायालय खोल दिया गया था। उसमें मँजे हुए प्रजा-द्रोहियों को छाँट-छाँटकर नियुक्त किया गया था। यह अदालत किसी को छोड़ना न जानती थी। किसी अभियुक्त को प्राणदण्ड देने के लिए एक सिपाही की शहादत काफी थी।''

"क्लार्क जब दौरे पर निकलता है तो एक अंग्रेजी रिसाला साथ ले जाता है और इलाके के इलाके उजड़वा देता है, गाँव के गाँव तबाह करवा देता है, यहाँ तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार करता है।''

यह दमन सोफिया जैसे कोमल भावों वाली युवती को विद्रोही बना देता है। उसका देश प्रेम जागृत हो जाता है और वह विनय का जिसे हृदय से प्रेम करती है, तिरस्कार करने से बाज नहीं आती। वह प्रेम में अन्धा बनकर जनता पर अत्याचार रहने वाले विनय का तिरस्कार करती है।

"अगर आज तुम रियासत के हाथों पीड़ित, दलित, अपमानित ओर दण्डित होकर मेरे सम्मुख आते तो मैं तुम्हारी बलाएँ लेती, तुम्हारे चरणों की रज मस्तक पर लगाती और अपना धन्य भाग समझती।ष सोफिया की प्रतिक्रिया के माध्यम से प्रेमचंद ने ब्रिटिश शासन के प्रति अपने विचार व्यक्त किये हैं- "मेरी दृष्टि में जिस राज्य का अस्तित्व अन्याय पर हो उसका निशान जितना जल्दी मिट जाय उतना ही अच्छा है।''

सोफिया शासन की दमनात्मक कार्यवाहियों से उत्तेजित होकर हिंसक क्रांति पर उतर आती है। वह कहती है- "... उन पापियों से खून का बदला लूँगी, जिन्होंने प्रजा की गर्दन पर छुरियाँ चलायी है।

टिप्पणी

एक-एक को जहन्नुम की आग में झोंक दूंगी तब मेरी आत्मा तृप्त होगी। जब तक अत्याचारियों के इस जत्थे का मूलोच्छेद न कर लूंगी। चौन न लूँगी, चाहे इस अनुष्ठान में मुझे प्राणों से ही क्यों न हाथ धोना पड़े, चाहे रियासत में विप्लव ही क्यों न हो जाए चाहे रियासत का निशान ही क्यों न मिट जाय? सोफिया के नेतृत्व में वीरपाल का दल सरकारी कर्मचारियों की हत्या करना आरम्भ करता है। जागीरें लूटी जाने लगती है और चारों और आतंक फैल जाता है। पर प्रेमचंद इस हिंसा और आतंक की राजनीति के समर्थक नहीं है, इसलिए बड़े आकस्मिक और अस्वाभाविक ढंग से यह कथा समाप्त हो जाती है। आतंकवादियों द्वारा मौत के घाट उतार दिये गये एक दरोगा की माँ से मुलाकात होते ही सोफिया का हृदय परिवर्तन हो जाता है और वह वीरपाल का साथ छोड़कर विनय के साथ बनारस लौट आती है। इस प्रसंग से न केवल आतंकवादी आन्दोलन की लक्ष्यहीनता का यथार्थ सामने आता है वरन् प्रेमचंद का गाँधीवादी झुकाव भी प्रकट होता है।

राजस्थान के प्रथा-प्रसंग के द्वारा प्रेमचंद ने स्वाधीनता आंदोलन के प्रति अंग्रेजों के रूख का चित्रण भी क्लार्क के माध्यम से किया है। लॉयड जॉर्ज ने जो लिबरल दल का प्रधानमंत्री था, अपने 2 अगस्त, 1922 के पार्लियामेण्ट के प्रसिद्ध भाषण में राजनीतिक सुधारों की माँग को सर्वथा बेमानी बताते हुए कहा था: "…. मुझे वह समय बिल्कुल नहीं दिखायी पड़ता जब भारतीय ब्रिटिश सिविल सर्विस के मार्गदर्शन और सहायता के बिना अपना काम चला सकें।' उसने यह भी कहा कि "ब्रिटेन किसी भी परिस्थिति में भारत में अपने उत्तरदायित्व का त्याग नहीं करेगाश। (डॉ० ताराचंद, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इंडिया, भाग-4)

इसी नीति का पालन करते हुए रीडिंग ने जिसने २ अप्रैल, १९२१ को गर्वनर जनरल का कार्यभार संभाला था, प्रलोभन, दमन और साम्प्रदायिक मतभेद के द्वारा स्वाधीनता-आन्दोलन को दबाने का कार्यक्रम अपनाया। रंगभूमि का अंग्रेज अधिकारी पात्र लिबरल दल का है पर वह भी उतना ही साम्राज्यवादी है जितना कंजरवेटिव दल का कोई सदस्य। यद्यपि वह सोफिया के प्रेम में अन्धा है और उसके इशारे पर नाचता है पर उसके शब्दों में उसके साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का आभास मिले बिना नहीं रहता। जब सोफिया क्लार्क से विनय के प्रति सहानुभूति रखने की बात कहती है तो क्लार्क उत्तर देता है "….. जो सहानुभूति साम्राज्य की जड़ खोखली कर दे, विद्रोहियों को सिर उठाने का अवसर दें प्रजा में अराजकता का प्रचार करें, से मैं अदूरदर्शिता ही नहीं पागलपन समझता हूँ।" वह अन्यत्र कहता है : "…. हमारा साम्राज्य अभी तक अजेय रहा है, जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहेगा।" "….हमें अपना राज्य प्राणों से भी प्रिय है और जिस व्यक्ति से हमें क्षति की लेखमात्र भी शंका हो उसे हम कुचल डालना चाहते हैं, उसका नाशकर देना चाहते हैं, उसके साथ किसी भाँति की रियासत, सहानुभूति यहाँ तक कि न्याय का व्यवहार भी नहीं कर सकते।"

जब क्लार्क को ज्ञात होता है कि सोफिया आतंकवादियो से मिल गयी है तो उसकी बौखलाहट निम्न पंक्तियों में व्यक्त होती है '….अब जाकर रहस्य खुला कि वह बालशेविकों की एजेण्ट है। उसके एक-एक शब्द से उसकी बोलशेविक प्रवृत्ति टपक रही है। वह आगे कहता है- "अंग्रेज जाति भारत को अनन्त काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाये रखना चाहती है। कंजरवेटिव हो या लिबरल, रेडिकल हो यालेबर, नैशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं। …. रेडिकल और लेबर नेताओं के धोखे में न आओ। … हम सबके सब मैं लेबर हूँ-साम्राज्यवादी है। अन्तर केवल उस नीति से जो भिन्न-भिन्न दल इस जाति पर आधिपत्य जमाये रखने के लिए ग्रहण करते हैं। कोई कठोर शासन का उपासक है, कोई सहानुभूति का, कोई चिकनी-चुपड़ी बातों से काम निकालने का। बस, वास्तव में नीति कोई है ही नहीं केवल उद्देश्य है, और वह यह कि क्योंकर हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर दृढ है।"

टिप्पणी

क्लार्क के इस कथन से अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति पर प्रकाश पड़ता है और प्रेमचंद की राजनीतिक समझ का पता चलता है। क्लार्क सोफिया के नेतृत्व में चलाये जा रहे आन्दोलन को बोलशेविक आन्दोलन कहता है बोलसेविक आन्दोलन से उसका तात्पर्य है आमम जनता के हिंसात्मक आंदोलन से। यद्यपि वीरपाल और सोफिया के नेतृत्व में चलने वाला प्रतिशोध अभियान किसी भी अंश में 'बोलसेविक आन्दोलनश नहीं है पर इससे इस प्रकार के आंदोलन' के प्रति ब्रिटिश सरकार के रवैय का पता तो चलता ही है।

जैसा कि उपन्यास से स्पष्ट है कि पूंजीपति जानसेवक पहले तो सूरदास को पैसे से खरीदना चाहता है पर जब सफल नहीं होता तो सरकारी तंत्र की सहायता लेता है। अंग्रेज कमिश्नर और जिलाधीश तो उसके पक्ष में हैं ही पर वे बदनामी न लेने के लिए यह काम नगरपालिका के अध्यक्ष राजा महेन्द्र कुमार से कराना चाहते हैं जो उनके इशारों पर काम करता है। जानसेवक कुँवर भरत सिंह और राजा महेन्द्र कुमार से भी साँठ-गाँठ कर लेता है। सोफिया के चलते वह न केवल इन सामन्ती परिवारों के निकट सम्पर्क में आ जाता है, वरन् कुँवर भरत सिंह को अपने कारखाने का शेयर बेचने में भी सफल हो जाता है। सूरदास की अनिच्छा और विरोध के बावजूद उसकी जमीन निकल जाती है। पर जल्दी ही सोफिया के प्रयास से जो व्यक्तिगत कारणों से सूरदास की समर्थक है, कलक्टर कलार्क उस आदेश को रद्द कर देता है। क्लार्क का यह आदेश सरकारी नीति के विरोध में है। उसने सोफिया के प्रेम में अन्धा बनकर यह फैसला दिया है जिसका दण्ड उसे भुगतना पड़ता है। उसके खिलाफ जनसेवक, कुँवर भरत सिंह, राजा महेन्द्र कुमार, डॉ० गांगुली, रानी जाह्नवी सभी मोर्चाबन्दी कर लेते हैं जिसके फलस्वरूप सरकार क्लार्क का तबादला कर देती है और उसका दूसरा आदेश रद्द कर सूरदास की जमीन अवाप्त कर ली जाती है। प्रेमचंद के इस प्रसंग द्वारा पूँजीवाद, सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के गठबन्धन को बेनकाब कर दिया है।

सूरदास की जमीन ले लेने के बाद मजदूरों की बस्ती के लिए पाण्डेपुर को खाली कराने का प्रश्न आता है और सरकार का फैसला जनसेवक के पक्ष में जाता है। समस्त पाण्डेपुर गाँव अवाप्त कर लिया जाता है। अन्य ग्रामवाशी तो रो-गाकर इस फैसले को मान लेते हैं पर सूरदास इसका विरोध करता है। वह जीते-जी अपनी झोपड़ी न छोड़ने का निश्चय करता है और यह कहता है।

"जब तक कोई न बोलेगा, पड़ा रहूँगा। कोई हाथ पकड़कर निकाल देगा, बाहर जा बैलूंगा। वहाँ से उठा देगा फिर आ बैलूंगा। जहाँ जन्म लिया वहीं मरूँगा। अपना झोपड़ा जीते-जी न छोड़ा जायेगा। मरने पर जो चाहे ले ले। बाप-दादों की जमीन खो दी, अब इतनी निशानी रह गयी है इसे न छोड़ूंगा। इसके साथ आप भी मर जाऊँगा।"वह आगे कहता है "सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं है तो मर जाने का बल तो है।"

सूरदास के इस कथन में गाँधीजी के सिद्धान्तों जैसे अहिंसा और सत्याग्रह की स्पष्ट झलक मिलती है।

4.3 प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताएँ

'रंगभूमि' प्रेमचंद का उल्लेखनीय सुप्रसिद्ध उपन्यास है। यह सन् 1924 में प्रकाशित हुआ था। आज और उस युग के बीच भारत के राष्ट्रीय जीवन तथा हिन्दी उपन्यास की लेखन शैली में बहुत अन्तर आया है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है। 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने स्वतंत्रता आंदोलन की प्रारम्भिक झलक का आभास दिया है। सम्भवत: उपन्यास को अंग्रेज सरकार की वक्रदृष्टि से बचाए रखने के लिए उन्होंने कथा का फलक राष्ट्रीय स्तर पर चित्रित न कर सीमित संघर्ष की भूमि पर प्रस्तुत किया है। जिस समय प्रेमचंद इस उपन्यास की रचना कर रहे थे उन दिनों कथा, पात्रों के चरित्र और उनकी मानसिक

रंगभूमि

टिप्पणी

सूक्ष्मताओं को स्पष्ट करने के लिए उनके स्थूल आचरण अथवा स्थूल घटनाओं का आश्रय अधिक लेती थी। पात्रों के मन में उठने वाली विचार-तरंगों को सूक्ष्म, प्रतीकात्मक और लाक्षणिक विधि से चित्रित करने की कला जैनेन्द्र कुमार तथा उनके परवर्ती, मनोवैज्ञानिक शैली में लेखकों ने कही बाद में विकसित की। अत: 'रंगभूमि' का अध्ययन करते समय प्रेमचंद की लेखन शैली की तत्कालीन इन सीमाओं को हमें नहीं भूलना चाहिए। तभी 'रंगभूमि' को रसपूर्वक पढ़कर उसकी देन का निर्दोष आनन्द उठाया जा सकता है।

'रंगभूमि' प्रेमचंद का सबसे बड़ा आकार वाला उपन्यास है। इसका वर्तमान उपलब्ध संस्करण दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास की कथा अनेक पकार के प्रकरणों घटनाओं और पात्रों को समेटती दूर-दूर तक उनकी दास्तान कहती चलती है। साधारण पाठक के लिए इसके विविध प्रकरणों को सही संदर्भो में समझकर उनके पारस्परिक सम्बन्ध को विश्लेषित करना सरल कार्य नहीं । सर्वप्रथम उपन्यास के कथनाक को विश्लेषित कर उसमें निहित विविध कथाओं को स्पष्ट किया उपन्यास के शीर्षक 'रंगभूमि' के द्वारा उपन्यासकार इसकी प्रमुख कथा को रेखांकित करना प्रमुख कथा है-पाण्डेपुर ग्राम के निट सी अंधे भिखारी सूरदास द्वारा खाली पड़ी, चरागाह के वाली पैतृक जमीन को पूँजीपति जॉनसेवक के चंगुल से बचाने के अनवरत संघर्ष और असफलता जमीन पर सिगरेट का कारखाना बन जाने पर गाँव के मकानों की बारी आती है। सूरदास संघर्ष कर पुनीत कर्तव्य के रूप में ग्रहण करता है। अपनी वृति को सन्तों की भाँति व्यक्तिगत मनोमालिन्य से कर रखकर तटस्थ बनाए रखता है। इसीलिए पूरी लड़ाई को प्रतीकात्मक रूप में खेल का नाम देता है। परिप्रेक्ष्य में उपन्यास की कथा को 'रंगभूमि' शीर्षक दिया जाना समीचीन बन बड़ा है। शब्दकोश में 'रंगभूमि' के कई अर्थ दिए गए है। जिनमें प्रमुख हैं; नाटशाला, युद्धक्षेत्र, क्रीड़ास्थान; समारोह का स्थान। इन सभी अर्थों को दृष्टि में रखते हुए मुख्य कथा और सूरदास की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए 'रंगभूमि' का आशय हुआ कि अपने अधिकार की रक्षा के लिए सूरदास ने गाँव के साधारण जीवन को युद्धक्षेत्र बनाया। युद्ध के पीछे कटुता की भावना नहीं थी केवल कर्त्तव्यबोध था। सच्चे मन से कर्त्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य मलिन चित्त नहीं होता। वह जीवनरूपी नाटयशला में अभिनेता की असंलगनता से अपनी भूमिका भर निभाता है। निर्मल मन के लिए सांसारिक लीला का स्थल, यह संसार क्रीड़ास्थल ही है। कर्तव्यबोध का निस्संग भाव से पालन करने वाले व्यक्ति के लिए जीवन का सारा कार्यव्यापार क्रीड़ा का ही रूप है और संसार क्रीड़ा स्थान ही है। क्रीड़ा का फल कुछ भी हो यह स्थान समारोह का रूप धारण कर लेता है।

'रंगभूमि' में सूरदास द्वारा छोड़े गए आंदोलन का चित्रण व्याप्त है। ऐसे आंदोलनों के चित्र प्रेमचंद के अन्य तीन उपन्यासों 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', और 'कर्मभूमि' में विशेष उभरे है। 'रंगभूमि' में दिखाया गया है कि बनारस के समीप पाण्डेपुर गाँव है यहाँ कुछ घर है जिनके निवासी छोटे-मोटे धन्धे करते हुए अपने आपने लिप्त और संतुष्ट है। सूरदास वही सड़क के किनारे बैठकर भिक्षावृत्ति से पेट भरता है और गाँववालों के हितैषी साधु-जेसा उसका सर्वस्वीकृत व्यक्तित्व है पूँजीपति जॉनसेवक उसकी जमीन खरीदना चाहता है परन्तु सूरदास को यह प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं है। सरकार और समाज जॉनसेवक का पक्ष लेती है। सूरदास जमीन न देने की बात पर डटा रहता है और अकेले दम पर आंदोलन प्रचार के रूप में छेड़ता है जीत जॉनसेवक की होती है और सूरदास प्राणों से हाथ धो बैठता है।

सूरदास की मृत्यु की खबर पाते ही छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, बूढे-जवान, हजारों की संख्या में शफाखाने के मैदान में एकत्र हुए। सब के सब इस खिलाड़ी को एक आँख देखना चाहते थे, जिसकी हार में भी जीत का गौरव था। कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था, बली था, कोई देवता कहता था पर वह यथार्थ में खिलाड़ी थाख़वह खिलाड़ी था जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाये, जीता तो प्रश्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त

टिप्पणी

रहा। भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नसीब नहीं हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूमि भरी हुई थी।

वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था, एक क्षुद्र शक्तिहीन प्राणी था, चिताआ और बाधाओं से घिरा हुआ, जिसमें अवगुण भी थे और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी दुर्गुण उस एक गुण के संपर्क में नमक की खान में जाकर नमक हो जाने वाली वस्तुओं की भाँति देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे।

मृत देह कितनी धूम-धाम से निकली इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। बाजे-गाजे न थे, हाथी-घोड़े न थे, पर आँसू बहाने वाली आँखों और कीर्ति गान करने वाले मुखों की कमी न थी सूरदास की सबसे बड़ी जीत यह थी कि शत्रुओं को भी उससे शत्रुता न थी। अगर शोक समाज में सोफिया, गांगुली, जाह्नवी, भरतसिंह, नायकराम, भैरो आदि थे तो महेन्द्रसिंह, जॉनसेवक, जगधर यहाँ तक कि मि० क्लार्क भी थे। सूरदास ने जीते जी जो न कर पाया था मरकर किया। सूरदास की मृत्यु के बाद लोगों ने चंदा इकट्ठा करके उसके झोंपड़े के स्थान पर उसकी मूर्ति स्थापित की। पांडेपुर में बड़ा समारोह था। नगर निवासी अपने-अपने काम छोड़कर इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। रानी जाह्ववी ने करुण कंठ और सजल नेत्रों से मूर्ति को प्रतिष्ठित किया। इसके बाद देर तक संकीर्तन होता रहा। फिर नेताओं के प्रभावशाली व्याख्यान हुए, पहलवानों ने अपने-अपने करतब दिखाये। संध्या-समय प्रीति-भोज हुआ, छुत और अछूत साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी। रात को एक नाटक-मंडली ने 'सूरदास' नाम का एक नाटक खेला। जिसमें सूरदास ही चरित्र का चित्रण किया गया था। प्रभु सेवक ने इंग्लैंड से यह नाटकार रचकर इसी अवसर के लिए भेजा था। 12 बजते-बजते उत्सव समाप्त हुआ। लोग अपने-अपने घर सिधारे वहाँ सन्नाटा छा गया।

आधी रात बीत चुकी थी। एक आदमी साइकिल पर सवार मूर्ति के समीप आया। उसके हाथ में कोई यंत्र था। उसने क्षण-भर तक मूर्ति को सर से पाँव तक देखा और तब उसी यंत्र से मूर्ति पर आघात किया। तड़ाक की आवाज सुनाई दी और मूर्ति धमाके के साथ भूमि पर आ गिरी और उसी मनुष्य पर जिसने उसे तोड़ा था वह दूसरा आघात करने वाला था इतने में मूर्ति गिर पड़ी। भाग न सका मूर्ति के नीचे दब गया। प्रात:काल लोगों ने देखा तो राजा महेन्द्र कुमार सिंह थे। सारे नगर में खबर फैल गयी कि राजा साहब ने सूरदास की मूर्ति तोड़ डाली ओर खुद उसी के नीचे दब गये। जब तक जिये सूरदास के साथ वैर-भाव रखा, मरने के बाद भी द्वेष करना न छोड़ा। ऐसे ईर्ष्यालु मनुष्य भी होते हैं ईश्वर ने उसका फल भी तत्काल ही दे दिया जब तक जिये सूरदास से नीचा देखा, मरे भी तो उसी के नीचे दबकर। जाति का द्रोही, दुश्मन, दंभी, दगाबाज और इनसे भी कठोर शब्दों में उसकी चर्चा हुई।

कुछ समय पश्चात मि० ईश्वर सेवक के भी प्राण-पखेरू हो गये। सोफिया ने यह शोक-समाचार सुना तो मान जाता रहा। अपने घर में अब अगर कोई को उससे प्रेम था तो वह ईश्वर सेवक ही थे। उनके प्रति उसे भी श्रद्धा थी तुरन्त मातमी वस्त्र धारण किये और अपने घर गयी। मिसेज सेवक दौड़कर उससे गले मिलीं और माँ-बेटियाँ मृत देह के पास खूब रोयी।

मिसेज सेवक की महत्वाकांक्षाओं पर तुषार पड़ गया। उस दिन से फिर किसी ने उन्हें गिरजाघर जाते हुए नहीं देखा वह फिर कभी गाउन और हैट पहने हुए न दिखायी दी, फिर योरपियन क्लब में नहीं गयी, आरफिर अंग्रेजी दावतों में सम्मिलित नहीं हुई। दूसरे दिन प्रात:काल पादरी पिम और मि० क्लार्क मातमपुरसी करने आये। मिसेज सेवक ने दोनों को वह फटकार लगाई कि अपना-सा मुँह लेकर चले गये। साराश यह कि उसी दिन उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, मस्तिष्क इतने कठोराघात को सहन न कर

टिप्पणी

सका। वह अभा तक जीवित है, पर दशा अत्यन्त करूण है। आदमियों की सूरत से घृणा हो गयी है, कभी हँसती है, कमा रोती है, कभी नाचती है, कभी गाती है। कोई समीप जाता है तो दाँत काटने दौड़ती है।

रहे मिस्टर जॉन सेवक। वह निराशामय धैर्य के साथ प्रात:काल से संध्या तक अपने व्यावसायिक धंधों में रत रहते हैं। उन्हें अब संसार से कोई अभिलाषा नहीं है कोई इच्छा नहीं है धन से उन्हें निस्वार्थ प्रेम है, कुछ वही अनुराग, जो भक्तों को अपने उपास्य से होता है। धन उनके लिए किसी लक्ष्य का साधन नहीं है, स्वयं लक्ष्य है। न दिन को दिन समझते हैं, न रात को रात। कारोबार दिन-दिन बढ़ता जाता है। लाभ भी दिन-दिन बढ़ता जाता है या नहीं, इसमें संदेह है। देश में गली-गली, दुकान-दुकान इस कारखाने के सिगार और सिगरेटों की रेल-पेल है। अब वह पटना में एक तंबाकू की मिल खोलने की आयोजन कर रहे हैं। क्योंकि बिहार-प्रांत में तंबाकू कसरत से पैदा होता है। उनकी धन-कामना विद्या व्यसन की भाँति तप्त नहीं होती।

कुँवर विनयसिंह की वीर मृत्यु के पश्चात रानी जाह्ववी का सदुत्साह दुगना हो गया।वह पहले से कही ज्यादा क्रियाशील हो गयी उनके रोम-रोम में असाधारण स्फूर्ति का विकास हुआ। वृद्धावस्था की आलस्यप्रियता यौवन-काल की कर्मण्यता में परिणत हो गयी कमर बाँधी और सेवक-दल का संचालक अपने हाथ में ले लिया। रनिवास छोड़ दिया, कर्मक्षेत्र में उतर आयी और इतने जोश से काम करने लगी कि सेवक दल को जो उन्नति कभी न प्राप्त हुई थी अब वह हुई। धन का इतना बाहुल्य कभी न था और न सेवकों की संख्या ही कभी इतनी न अधिक थी। उनकी सेवा का क्षेत्र भी कभी इतना विस्तीर्ण न था उसके पास निज का जितना धन था। वह सेवक-दल को अर्पित कर दिया, यहाँ तक कि अपने लिए एक आभूषण भी न रखा। तपस्विनी का वेष धारण करके दिखा दिया कि अवसर पड़ने पर स्त्रियाँ कितनी कर्मशील हो सकती है।

कुँवर भरतसिंह अब फिर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। फिर वही सैर और शिकार, वहीं अमीरों के चोंचले, वही रईसी के आडंबर वही ठाठ-बाट। उनके धार्मिक विश्वास की जड़े उखड़ गयी है। इस जीवन से परे अब उनके लिए अनंत शून्य और अनंत आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लोक असार है परलोक भी असार है जब तक जिंदगी है हँस-हँसकर काट दो। हम जीवन मात्र है और हमारा काम केवल जीना है। देश-भक्ति, विश्व-भक्ति, सेवा, परोपकार, यह सब ढकोसला है। अब उनके नैराश्य-अथित हृदय को इन्हीं विचारों से शांति मिलती है।

यही पर उपन्यास की समाप्ति हो जाती है। इस कथा को निर्मिति में उपन्यासकार को महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन ने परोक्षत: प्रेरित किया है। प्रेमचंद अपने एक निबंध में स्वयं लिखते हैं कि सूरदास-पात्र की रचना में प्रेरक-स्वरूप अपने गाँव में उनका देखा हुआ एक अंधा भिखारी है।

प्रेमचंद का 'परिवार-प्रयोग'

सूरदास का कोई परिवार नहीं है वह अविवाहित है। पाण्डेपुर की बस्ती ही उसका वास्तविक घर-परिवार है। साधारण मानवीय अपनत्व अप्रकट रूप से सबको परस्पर बांधे रखता है। बस्ती का भैरो पत्नी सुभागी से दुर्व्यवहार और मारपीट करता है। बात बढ़ने पर वह सूरदास के यहाँ आश्रय लेती है। इस प्रकार लेकर भैरा सूरदास को अदावत रखता है किन्तु सूरदास की ऋषितुल्य सच्चरित्रता, उदारता और क्षमाशीलता से पराभूत होता है।

दूसरी ओर सूरदास के प्रतिद्वन्द्वी जॉनसेवक का भी परिवार है जॉनसेवक स्वयं धन के प्रेमी है और उसे कमाने में उनका जीवन अर्पित है। उसकी मुखाकृति से गरूर और आत्मविश्वास झलकता है।

टिप्पणी

पत्नी मिसेज सेवक को काल-गति ने अधिक सताया है चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थी उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी। स्वार्थप्रियता के कारण उदार, स्वतंत्रता प्रेमी पुत्री सोफिया की गतिविधि फूटी आँख न देख सकती। अन्ततः पागल हो जाती है। पुत्र प्रभुसेवक जवान था चेहरे पर गम्भीरता और विचार का गाढ़ा रंग नजर आता था। वह कवि हृदय है ओर स्वेच्छापूर्वक लन्दन जा बसता है। पुत्री सोफिया बड़ी-बड़ी आँखों वाली लज्जाशील युवती है। देह अति कोमल, रूपअति सौभ्य। सिर से पाँव तक चेतना ही चेतना थी वह हिन्दू धर्म की उदारता पर निछावन हे। किन्तु युवक विनय की सरलता और त्यागपरता पर मुगध हो घर क्या यह संसार छोड़ जाती है। जॉनसेवक के अवकाश प्राप्त वयोवृद्ध पिता ईश्वर सेवक का जीवन का मूल तत्व किफायतश था वह अपने धर में धन का अपव्यय नहीं देख सकते थे, चाहे वह किसी मेहमान पर ही क्यों न हो। घोर धर्मानुरागी हैं। अन्त में ईश्वर सेवक फिजूलखर्ची देखकर सिर धुनते प्राण त्यागते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रेमचंद कथा कहते हुए कहीं-कहीं एक पात्र नहीं उसका पूरा परिवार ही अपना विषय बना लेते हैं। वे परिवार के व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध और उसकी अन्तःक्रियाओं का बारीकी से चित्रण करते हुए चरित्रों की विविधता तथा उनकी जीवन्त गति को चित्रित करते हैं। उसके परिवार-प्रयोग' से कथा विशेष प्रकार के आत्मीय तत्व को ग्रहण कर लेती है, इसी के साथ कथा के प्रभाव को दूरी तक बाँधे रखकर द्विगुणित करने में उन्हें विशेष सहायता मिलती है। इसके विपरीत अलग-अलग पात्रों की कथा कहने में अलग स्थलो और विविध कालों में कथाकार को स्वभावतः प्रवेश करना पड़ सकता है। एक ही परिवार के अनेक पात्रों में कथासूत्रों का समवेत रूप से विकसित होना नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करता है। सफल नाटक में संकलन-त्रय का गुण सहायक होता है। संकलन-त्रय में कथा की एकता यानी, उसका सुगंठित होना, स्थान की एकता और घटना के काल की एकता, इन तीनों तत्वों का समावेश रहता है। प्रेमचंद परिवार-प्रयोग में संकलन-त्रय के गुण स्वतः आ जाते हैं। उपन्यास में सोफिया के प्रेमी विनय का परिवार भी क्रम-क्रम से उद्घाटित होते हुए कथा का रूप धारण कर लेता है। विनय के पिता भरतसिंह एक रियासत के मालिक है वे विलासप्रिय है। पत्नी जाह्नवी आत्मभिमानी महिला है। उसे देशप्रेम और आत्म-गौरव सर्वाधिक प्रिय है। भरतसिंह का पुत्र विनय सरल तथा स्वाभिमानी युवक है वह अपनी लगन की पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता है वह सूरदास के आंदोलन के दौरान अपनी निष्ठा पर आक्षेप नहीं सह सकता। सच्चाई के प्रमाणस्वरूप अपने हाथों प्राण गंवा बैठता है। उसकी बहन इन्दु साधारणतः संख्त स्वाभिमानी और किसी सीमा तक अहंकार-प्रिय युवती है। यशलिप्सु समाजसेवी पति महेन्द्र कुमार की संकीर्णता और स्वार्थप्रियता उसे नहीं भाती। अंत में दोनों का संबंध टूट जाता है।

उपन्यास के कथा-प्रवाह में एक ओर 'परिवार-प्रयोग' है। ताहिरअली जॉनसेवक के गोदाम का मुंशी है। वह धर्मभीरू, परिश्रमी है और संयुक्त परिवार के दायित्व-निर्वाह में भोलपेन के कारण मूर्ख सिद्ध होता है। दो विधवा विमाताएँ है जो कुटिल और शोषक है उनके पुत्र भी है। ताहिरअली गबन करने के आरोप में जैल जाता है जेल से लौटने पर उसकी आँखे खुलती है। यह कथा उपन्यास के मूल प्रवाह का अंग नहीं है। प्रमचंद कथा-विस्तार देने के क्रम में चारों ओर की दुनिया को समेटते चलते हैं। उसी प्रवृत्ति की देन यह कथा है। अंत में प्रेमचंद के सूक्ति-प्रयोग की विशेषताओं पर प्रकाश डालना अप्रासंगिन न होगा। प्रेमचंद ने उपन्यास-कला को मानव चरित्र का 'चित्र-मात्र' का साधक स्वीकार किया है। चरित्र का चित्रण वे पात्रों और घटनाओं के परस्पर घात-प्रतिघात के आश्रय से करते हैं। साथ ही वर्णन-विश्लेषण के अन्तर्गत वे सावन के अनुभवों और मनुष्य के चरित्र विषयक अपने निष्कर्षों को एक या एकाधिक वाक्यों में सहज ही, 7 रूप में ढालते चलते हैं। उनकी सूक्तियाँ कभी अनुभव का वर्णन मात्र करती है तो कभी उसकी व्याख्या भी करती है। कहीं वे सूक्ति को उदाहरण-सहित प्रस्तुत

टिप्पणी

करते हैं और कहीं उसके कारण का पण करते हैं। मानव-स्वभाव को सूत्र-रूप में ढालते समय वे उनकी व्याख्या करते हुए पूरा अनुच्छेद तक लिख डालते हैं। कभी मानव-स्वभाव को स्पष्ट करने के लिए विरोधाभाव और कभी तुलना आदि साधनों का आश्रय लेते हैं। 'रंगभूमि' में प्रयुक्त उनकी प्रमुख सूक्तिों का उदाहरणस्वरूप यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। यथा -

साझे की सूई ठेले पर लदती है।
तू चल मैं आता हूँ यही हुआ किया।
(विरोधाभास) लज्जा अत्यन्त निर्लज्ज होती है
उदण्डता सरलता का केवल उग्र रूप है
तोप के सामने खड़ा सिपाही भी बिच्छू को देखकर सशंक हो जाता है।
के पास युक्तियाँ नहीं होती, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं।
धर्म का मुख्य स्तम्भ भय है क्रियात्मक सहानुभूति ग्राम निवासियों का विशेष गुण है।
कुतुहल का परिकृष्त रूप ही आदर है।

इन सूक्तियों को पढ़कर पाठक जीवन पर और मनुष्य के मन में रहस्यों पर रह-हर कर विचार, पुनर्वचार करने को विवश हो तो आश्यर्च नहीं। 'रंगभूमि- में मनुष्य के अहं की लीला-वैवित्रय का विविध संदर्भो में मार्मिक चित्रण हुआ है, और मानव-मनोविज्ञान के रहस्यों पर उपन्यासकार ने सशक्त सूत्र सँजाये हैं।

4.4 सूरदास का चरित्र

प्रेमचंद ने बड़े सहज भाव से उपन्यास के आरंभ में ही सूरदास को जो परिचय दिया है वह उसके वर्ग-गत व्यक्तित्व को भूमिका-स्वरूप प्रस्तुत करता है। वे लिखते हैं, "भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है न काम की। सूरदास उनका बना-बनाया नाम है और भीख माँगना बना-बनाया काम है। उनके गुण और स्वभाव भी जगत-प्रसिद्ध है। गाने-बजाने में विशेष रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभावितक लक्षण है। बाह्य दृष्टि बंद और अंतदृष्टि खुली हुई।"

सूरदास का चरित्र व्यक्ति प्रदान या विलक्षण उन्हीं स्थलों पर बनता है जहाँ उसके स्वभाव में अन्तर्विरोध का तत्व प्रबल होता है या जहाँ वह अपनी उदारता और न्यायप्रियता को दृढ़ता प्रदान करता है। साधारणत: सूर की वर्गगत विशेषताओं की उपन्यास में आद्यन्त व्याप्ति है। सूर एक ओर त्याग और संतोष का जीता-जागता प्रतीक है। किन्तु सड़क के किनारे बैठे भीख माँगते जब उसे इक्के या फिटन के आने-जाने की आवाज सुन पड़ती है तो उनके पीछे दौड़ने में उसके पैरों में पर लग जाते हैं। एक पैसे के लिए वह पूरे एक मील की दौड़ लगा सकता है। यहाँ कहना न होगा, प्रेमचंद पात्रों और परिस्थिति के चित्रण में मौज में आकर, सहज रूप से अतिरेक का पुट भी देते चलते हैं। यह बात उपन्यास में अनेक प्रकरणों में दृष्टव्य है। सूरदास की निर्मित में प्रेमचंद के अतिरेक का स्पर्श अनायास दीख पड़ता है, फिर भी कुल मिलाकर यह चरित्र इतना भव्य और प्रभावी बन पड़ा है कि इसके चित्रण में अनायास रेंग आए किंचित् दोषों को, पाठक-आलोचक, अनदेखा कर देना पसन्द करेंगे।

सूर अत्याचारी पति भैरो के हाथों से उसकी पत्नी सुभागी की रक्षा करने में बदनामी और कष्ट उठाता चलता है। भैरो उसकी झोपड़ी में आग ही नहीं लगाता वरन पाँच सौ रुपयों की थैली भी उड़ा ले जाता है। यह धनराशि उस युग में बहुत बड़ी है और भिखारी सूरदास की चिरसंचित पूँजी है। सुभागी के हाथों भैरों के घर से रुपयों की वही थैली पुन: प्राप्त होने पर सूर उसे भैरों का धन मानकर लौटा आता है। थैली की वापसी का भेद खुलने पर भैरो जो वितण्डा खड़ा करता है उससे सूर ही नहीं पूरे गाँव के जीवन में भूकंप आ जाता है। साधारणत: ऐसी विरति और त्याग की घटना अस्वाभाविक जान

पड़ सकती है। किन्तु सूर जैसा विलक्षण चरित्र सामान्य से ऊपर होता है। वह अपनी अस्मिता को स्थापित करने के लिए ऐसा कर भी बैठे तो क्या आश्चर्य। एक ओर सूर इतना उदार है और दूसरी ओर सुभागी को छेड़े जाते देख पड़ोस के नौजवानों के प्रति उतना ही कठोर हो उठता है। वह किसी की नहीं सुनता और उन्हें जेल की सजा दिलाकर रहता है। वह जमीन छिनने पर दो बार आंदोलन छेड़ता है। धरम के काम के लिए वह उसे त्याग सकता था। किन्तु अन्याय और जबरदस्ती के आगे घुटने टेकना नहीं जानता था। अहिंसात्मक सत्याग्रह में कई लोग मारे जाते हैं और वह स्वयं भी प्राण गवाँता है। सूरदास की दृढ़ता औचित्य के पक्ष में है वह जो कुछ करता है असंलगन भाव से उसके केवल अपना परम कर्तव्य समझकर। वह पूँजीपति और उसके समर्थकजनों से टक्कर लेता है। किन्तु वर्ग-विद्वेष का उसमें लेश नहीं। वर्ग-संघर्ष प्रेमियों को यह बात खटक सकती है। पर यहाँ ध्यान देने योग्य है सूरदास की व्यक्तिगत स्थिति और उसका मानसिक चिंतन-स्तर। सूरदास बच्चों के रोने पर सोचता है "वाह! मैं तो खेल में रोता हूँ।... खेल में रोना कैसा? खेल हँसने के लिए, दिल बहलाने के लिए, रोने के लिए नहीं।" मरणासन्न दशा में वह मानो इस कथन का भाष्य बड़बड़ाता है।

"तुम्हारा धरम तो है हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, धाँध ली तो नहीं की। फिर खेलेंगे जरा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी जरूर होगी।"

अन्त में उपन्यासकार पूरे अनुच्छेद में सूर के चरित्र पर जो टिप्पणी करता है। उसका सार है कि सूर में गुण कम थे, अवगुण बहुत। किन्तु ये सभी दुर्गुण उसके एक गुण के संपर्क से नमक की खान में जाकर नमक खो जाने वाली वस्तुओं की भाँति, देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे। वह गुण था न्याय-प्रेम। अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था अनीति उसके लिए असहय थी।

4.5 अभ्यास-प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **'रंगभूमि' का राजनीतिक उपन्यास के रूप में मूल्यांकन कीजिए।**
2. **सूरदास के चरित्र पर व्याया कीजिए।**
3. **प्रेमचन्द का 'परिवार - प्रयोग' । टिप्पणी कीजिए।**
4. **'रंगभूमि' में सूरदास द्वारा छोड़े गए आंदोलन का चित्रण अपने शब्दों में कारें।**
5. **प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताओं कि व्याख्या करें।**

विस्तृत उतरीय प्रश्न

1. **'सूरदास एक विलक्षाण चरित्र है।' उसके चरित्र के प्रमुख बिंदुओं पर चर्चा करें।**
2. **'रंगभूमि' उपन्यास मानवीय विजय का संदेश किस प्रकार देता है।?**
3. **'रंगभूमि' की भूल समस्या पर प्रकाश डालिये**
4. **क्या 'रंगभूमि' का राजनीतिक संघर्ष गांधीवादी आंदोलन से मिलता-जुलता है ? सपष्ट कीजिए।**
5. **'रंगभूमि' उपन्यास में परिवार प्रयोग का क्या महत्व है?**
6. **'रंगभूमि' के औन्यासिक शिल्प की व्याखा करें।**

♦♦♦♦♦

इकाई 5

गबन

संरचना

5.1 गबन
5.2 गबन और राष्ट्रीय आन्दोलन
5.3 गबन और मध्यवर्गीय समाज
5.4 गबन का औपन्यासिक शिल्प
5.5 अभ्यास-प्रश्न

टिप्पणी

5.1 गबन

बरसात के दिन है सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छाई हुई है। रह-रहकर रिमझिम वर्षा होने लगती है। अभी तीसरा पहर है पर ऐसा मालूम होता है शाम हो गई। लड़कियाँ आमों के पेड़ पर झूला झूल रही है उनकी माताएँ भी साथ में है। सबके दिल उमंगों से भरे हुए है इसी समय एक बिसाती आकर झूले के पास आकर खड़ा हो गया सबों ने उसे घेर लिया। बिसाती ने अपना संदूक खोला चमकती-दमकती चीजें निकालकर दिखाने लगा। कच्चे मोतियों के गहने, लटू और झुनझुने। किसी ने कोई चीज ली, किसी ने कोई चीज। एक बड़ी-बड़ी आँखों वाली बालिका ने वह चीज पसन्द की जो उन चीजों में सबसे सुंदर थी। वह एक फिरोजी रंग का चंद्रहार था माँ से बोली अम्मा, मैं यह हार लूँगी। माता ने मोल-भाव कर हार बालिका को लिवा दिया। उसे पहनकर बालिका सारे गाँव में नाचती फिरी।

लड़का का नाम जलपा था माता का मानकी। महाशय दीनदयाल प्रयाग के एक छोटे से गाँव में रहते थे वह जमींदार के मुख्तार थे जलपा इन्हीं की लड़की थी।

दीनदयाल जब कभी प्रयाग जाते तो जलपा के लिए कोई न कोई आभूषण जरूर लाते, इसलिए जलपा आभूषणों से ही खेलती। यही उसके खिलौने थे। वह बिल्लौर का हार जो उसने बिसाती से लिया था अब सबसे प्यारा खिलौना था असली हार की अभिलाषा अभी उसके मन में उदय नहीं हुई थी। कोई उत्सव होता या कोई त्यौहार पड़ता तो वह उसी हार को पहनती। कोई दूसरा गहना उसे न जाँचता था।

एक दिन दीनदयाल लौटे तो मानकी के लिए चंद्रहार लाए। मानकी चन्द हार पाकर मुग्ध हो गई। जलपा को अब अपना हार अच्छा न लगता। वह पिता से ऐसा ही हार लाने की जिद करने लगी। पिता ने जल्द ही ऐसा हार लाने की बात कही परन्तु बाप के शब्दों से जलपा का मन न भरा वह माँ से जिद करने लगी। माँ ने कहा कि, "ऐसा हार तो तेरी ससुराल से आएगा।"

यह हार छः सौ में बना था इतने रुपये जमा कर लेना दीनदयाल के लिए आसान न था। बरसो में कहीं यह हार बनने की नौबत आयी थी। जीवन में फिर कभी इतने रुपये आऐंगे उसमें उन्हें संदेह था। जालपा लज्जा कर भाग गई पर उसके हृदय पर वह शब्द अंकित हो गय। ससुराल अब उसके लिए भयंकर न थी। ससुराल से चंद्रहार आएगा, वहाँ के लोग उसे माता-पिता से अधिक प्यार करेंगे। लेकिन ससुराल से न आए तो। तो क्या माता जी अपना हार मुझे दे देगे? अवश्य दे देंगी?

इस तरह हँसते-खेलते सात वर्ष कट गए और वह दिन भी आ गया जब उसकी चिर-संचित अभिलाषा पूरी होगी।

मंशी दीनदयाल की जान-पहचान के आदमियों में एक महाशय दयानाथ थे बड़े ही सज्जन और सहृदय। वह कचहरी में नौकर थे पचास रुपये वेतन पाते थे उनका बड़ा लड़का रमानाथ दो ही महीने में कालेज की पढ़ाई छोड़ बैठा। पिता ने कहा पढ़ना चाहते हो तो अपने पुरुषार्थ से पढ़ो। बहुतों ने किया तुम भी कर सकते हो। पर उसमें इतनी लगन न थी। शतरंज खेलता, सैर-सपाटे करता और माँ तथा छोटे भाइयों पर रौब जमाता। इसी युवक को दीनदयाल ने जालपा के लिए पसन्द किया। दयानाथ शादी नहीं करना चाहते थे परन्तु पत्नी रामेश्वरी की हट के आगे उन्हें झुकना पड़ा। दयानाथ के पास न रुपये थे और न ही एक नए परिवार का भार उठाने की हिम्मत। रामेश्वरी ने इस बाधा की मानो हवा में उड़ाकर कहा कि मुझे तो विश्वास है दीनदयाल पोढ़े आदमी है और फिर एक ही संतान है। टीके में एक हजार से कम नहीं देगे। उन्हीं पैसों से गहनों का प्रबन्ध हो जायेगा। दो चार सौ बाकी रहे वह धीरे-धीरे चुक जाएगा।

टिप्पणी

विवाह की घड़ी भी आ गई दयानाथ ने तीन हजार के गहने बनवा लिये। दीनदयाल ने टीके में हजार रुपये दिये तो दयानाथ ने सोचा "मियाँ की जूती मियाँ की चाँदश्श बँधा हुआ घोड़ा थान से खुल गया। धूमधाम से विवाह हुआ। दयानाथ ने गहनों में सब दिया परन्तु चढ़ावे में चंद्रहार की कमी रह गई। जालपा को जब मालूम हुआ की गहनों में चंद्रहार नहीं है तो उसके कलेजे पर चोट लग गई। उसने निश्चय किया मैं कोई आभूषण नहीं पहनूँगी।

महाशय दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गये थे उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया, लेकिन वहाँ जो कुछ मिला वह सब नाच-तमाशे, नेग-चार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये खर्च किए। सर्राफ को किस्त बाँध कर छः महीने में बाकी रुपये चुका देना का वायदा किया परन्तु चुका न पाये तब दयानाथ ने बाकी रकम की चीजे लौटाने का वादा किया। रमानाथ ने जालपा से छुप कर गहनों की संदूकची पिता को दे दी तथा घर में चोरी हो जाने का नाटक करने लगा। जालपा को गहनों से अत्यधिक प्रेम था गहनों की चोरी के बाद से न कुछ खाती न पीती। सारा घर समझा कर हार गया पर जालपा ने रोग शय्या न छोड़ी। वह रमा से अधिक क्रोधित थी उसे जली-कटी सुना देती। रमा ने भी अब नौकरी की तलाश शुरू की। सुबह से शाम तक नौकरी की तलाश में भटकता रहता। जालपा का मुाया चेहरा देखकर उसके मुँह से ठंडी सांस निकल जाती थी। वह कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहता था जिसे वह जल्द ही अतुल संपत्ति का स्वामी हो जाए और जालपा के लिए हीरे जड़े चंद्रहार बनवाये।

रमा के परिचितों में एक रमेश बाबू म्यूनिसिपल बोर्ड में हेड क्लर्क थे। तीस रुपये में उन्होंने दफ्तर में रमा को जगह दिला दी। दो-चार दिन के अनुभव से ही रमा को सारे दाँव-घात मालूम हो गए। रमा की आमदनी तेजी से बढ़ने लगी। आमदनी के साथ प्रभाव भी बढ़ा। परन्तु जालपा की अभिलाषा अभी भी अधूरी थी गहनों के लिए जालपा कभी भी रमा से नाराज हो जाती थी। अतः रमा ने जालपा के लिए हार लाने का निश्चय किया। यह गंगू सुनार की दुकान पर गया और उससे कम कीमत वाला हार दिखाने को कहा गंगेने उसे कई हार दिखाये परन्तु रमा ने सोचा रखा था कि सौ रुपये से जयादा उधार न करूंगा और तीन सौ रुपये उसके पास है लेकिन चार सौ रुपये वाला हार आँखों को जॅचता न था। गंगू ने उसका संशय ताड़कर उसे बाकी पैसे बाद में देने को कहा तो रमा ने हार के साथ शीशफूल भी ले लिया। जालपा गहने दखकर बहुत प्रसन्न हो गई। धीरे-धीरे रमा रिश्वत के जाल में फँस जाता है एक दिन दफ्तर में चपरासी के सिवा और कोई न था रमा रजिस्टर खोलकर अंकों की जाँच करने लगा। मीजान में ढाई हजार एकाएक उसे बात सूझी। क्यों ने ढाई हजार की जगह दो हजार लिख दूं, अगर चोरी पकडी गई तो मीजान लगाने में गलती हो गई। मगर इस विचार को उसके मन में टिकने न दिया।

इक्की-दुक्की गाड़ियाँ आने लगी। गाड़ीबानों ने देखा, बाबू साहब आज यही है तो सोच कर चंगी देकर छुट्टी पर जाए। रमा ने इस कृपा के लिए दस्तूरी की दूनी रकम वसूल की और गाड़ीवानों ने शौक से दी क्योंकि यही मंडी का समय था और बारह-एक बजे तक चुंगीधर से फुरसत पाने की दशा में चौबीस घंटे का हर्ज होता था।

रमा रोज प्रातः दफ्तर जाता और चिराग जले लौटता। वह रोज यही आशा लेकर जाता कि आज कोई बड़ा शिकार फँस जाएगा। आखिरकार एक दिन रमा ने दफ्तर के रुपयों पर हाथ साफ कर दिया। परन्त जब पोल खुली तो मानो आसमान फट गया। ऐसा जान पड़ता था कोई भंयकर जंतु उसे निगलने के लिए बढ़ा चला आता है उसकी सारी कपट-लीला खुल गई। जिन बातों को छिपाने की उसने इतने दिनों से चेष्टा की उन सबों ने आज मानों उसके मुंह पर कालिख पोत दी। वह अपनी दुर्गति को अपनी

आँखों से नहीं देख सकता था। क्या संसार में ऐसी कोई जगह जहाँ वह जीवन का नया सूत्रपात कर सके। जहाँ वह इस तरह छिप जाए कि पुलिस उसका पता न पा सके। गंगा की गोद के सिवा ऐसी जगह ओर कहाँ थी। मगर फिर ख्याल आया कि जालपा का क्या होगा। इन्हीं विचारों में वह मग्न था सहसा रेल की सीटी सुनकर वह चौक पड़ा। रेलगाड़ी सामने खड़ी थी। उसे बैठ जाने की प्रबल इच्छा हुई मानों उसमें बैठते ही वह सारी बाधाओं से मुक्त हो जाएगा। वह बिना टिकट ही गाड़ी में बैठ गया। अभी गाड़ी को चले दस मिनट ही हुए थे कि टिकट बाबू अंदर आए। डिब्बे में बैठे 60-70 साल के एक बूढ़े ने रमा की मदद की। रेलगाड़ी कलकत्ता जा रही थी। रमा को बूढ़े की बातों से मालूम हुआ कि वह जाति का खटिक है कलकत्ता में उसकी शाक-भाजी की दुकान है रहने वाला तो बिहार का है पर चालीस सालों से कलकत्ता में ही रोजगार कर रहा है। देवीदीन नाम है बहुत दिनों से तीर्थयात्रा की इच्छा थी, बदरीनाथ की यात्रा करके लौटा जा रहा है। उसके परिवार में उसकी पत्नी थी चार बेटे थे दो का ब्याह हो गया था सब बाल-बच्चे तो भगवान के घर गये थे घर में दो कोठरियाँ थी सामने दालान है एक कोठरी ऊपर है। देवीदीन ने रमा को अपनी सारी जीवन-कथा कह सुनाई। रमा को भी अपने बारे में मनगढन्त कथा कहनी पड़ी। बातें करते-करते रमा को नींद आ गई। देवीदीन ने उसे अपनी जगह सुला दिया। स्वयं बैठकर स्नेह भरी आँखों से उसे देखता रहा।

उधर जब जालपा को रमा के विषय में मालूम हुआ था उसने अपने गहने बेच कर दफ्तर के पैसे चुकाये और रमा का इंतजार करने लगी। एक सप्ताह हो गया, रमा का कहीं पता नहीं। कोई कुछ कहता कोई कुछ। तरह-तरह के अनुमान लगाये जाते। केवल इतना ही पता चलता कि रमानाथ ग्यारह बजे रेलवे स्टेशन की ओर गए थे सबका ख्याल था कि रमा ने आत्महत्या कर ली परन्तु स्पष्ट नहीं था। सास-ससुर दोनों ही जालपा पर आरोप लगा रहे थे। साफ-साफ कह रहे थे कि इसी के कारण रमा के प्राण गए। कोई जालपा के आँसू न पोंछता था। केवल रमा के सहकर्मी रमेश बाबू उसकी तत्परता और सद्बुद्धि की प्रशंसा करते थे।

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के सबसे अधिक छपने वाले दैनिक पत्र में एक नोटिस निकल रहा है जिसमें रमानाथ के पर लौट आने की प्रेरणा दी गई, और उनका पता देने वाले आदमी का पाँच सौ रुपये इनाम देने का वचन दिया गया, मगर अभी कोई खबर नहीं आई। जालपा चिन्ता में घुलती जा रही थी दयानाथ ने उसकी दशा देखकर दीनदयाल को पत्र लिखा तथा जालपा को मैके ले जाने के लिए कहा। दीनदयाल पत्र पाते ही घबराये हुए आए पर जालपा ने मैके जाने से इंकार कर दिया। क्वार का महीना लग गया था। जालपा छत पर लेटी हुई मेधखंडों की अठखेलियाँ देखा करती। बादल के टुकड़े भाँति-भाँति के रंग बदलते, भाँति-भाँति के रूप भरते, कभी आपस में प्रेम से मिल जाते तो कभी रूढ़कर अलग-अलग हो जाते। जालपा सोचती, रमानाथ भी कहीं बैठकर यही मेघ-क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना से उसे आनंद मिलता। जालपा को अब यही शंका होती कि ईश्वर ने मेरे पापों का दंड दिया है। आखिर रमानाथ किसी का गला दबा कर ही रोज रुपये लाते थे। कोई खुशी से तो न दे देता था। यह रुपये देखकर वह कितनी खश होती थी। इन्हीं रुपयों से तो नित्य शौक शृंगार की चीजें आती रहती थी। उन वस्तुओं को देखकर अब उसका जी जलता था। यही सारे दुखों की मूल है इन्हीं के कारण यह सब हुआ। वे चीजें उसकी आँखों में ने काँटों की तरह चुभती थी।

आखिर एक दिन उसने इन सब चीजों को जमा किया। अच्छा खासा एक ढेर हो गया। वह ढेर को गंगा में डुबो देगी और अब से एक नए जीवन का सूत्रपात करेगी। इन्हीं वस्तुओं के पीछे आज उसकी यह गति हुई। आज वह इस मायाजाल को नष्ट कर डालेगी। मन में सोच रही थी अब यदि ईश्वर की दया हुई और वह फिर लौटकर घर आए तो वह इस तरह रहेगी कि थोड़े-से-थोड़े में निर्वाह हो जाए।

टिप्पणी

एक पैसा भी व्यर्थ खर्च न करेगी। अपनी मजदूरी के ऊपर एक कोड़ी भी घर में न आने देगी। आज से उसके नये जीवन का प्रारंभ होगा।

जालपा ने बैग उठाया और गंगा तट पर पहुँच गई। बैग को उठाकर पानी में फेंक दिया। अपनी । निर्बलता पर यह विजय पाकर उसका मुख प्रदीप्त हो गया आज उसे जितना गर्व और आनंद हुआ, उतना इन चीजों को पाकर भी न हुआ था। ऐसा लगा मानो प्रभात की सुनहरी ज्योति उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गई।

रमानाथ को कलकत्ते आए हुए दो महीने से ऊपर हो गए है वह अभी तक देवीदीन के घर पड़ा हुआ है। उसे हमेशा रुपये पाने की धुन सवार रहती है पर घर से बाहर नहीं निकलता। हाँ जब अंधेरा हो जाता तो वह एक बार मुहल्ले के वाचनालय में जरूर जाता अपने नगर और प्रांत के समाचारों के लिए उसका मन सदैव उत्सुक रहता है। उसने वह नोटिस देखी जो दयानाथ ने पत्रों में छपवाई थी, पर उस पर विश्वास न आया। कौन जाने पुलिस ने उसे गिरफ्तार करने के लिए माया रची हो। रुपये भला किसने चुकाए होंगे? असंभव। अगर यह मान भी लिया जाए कि रुपये घरवालों ने अदा कर दिए होंगे तो क्या इस दशा में भी वह घर जा सकता है। शहर-भर में उसकी बदनामी हो ही गई होगी, पुलिस में इत्तला की ही जा चुकी होगी। उसने निश्चय किया कि मैं नहीं जाऊँगा। जब तक कम से कम पाँच हजार रुपये हाथ में न आ जाएँगे घर जाने का नाम न लूँगा।

देवीदीन के घर में वह ब्राह्मण बन कर रह रहा था। देवीदीन की पत्नी जग्गों को रमा का आसन जमाना अच्छा नहीं लगता था वह उसे अपना मुनीम बनाये हए थी। उससे हिसाब लिखाती, पर इतने से काम के लिए वह एक आदमी रखना व्यर्थ समझती है। यह काम तो वह ग्राहकों से यों ही करा लेती थी। उस रमा का रहना खलता था पर रमा इतना नम्र, इतना सेवा तत्पर, इतना धर्मनिष्ठ है कि वह स्पष्ट रूप से कोई आपत्ति नहीं कर सकती। इस प्रकार दो महीने और बीत गए। पूस का महीना आग या रमा के पास जाड़ी का कोई कपड़ा न था। बेचारा रात भर गठरी बना रहता। देवीदीन ने उसे एक पुरानी दरी बिछाने को पदाथा जब बहुत सर्दी लगती तो बिछावन ओढ़ लेता। जब दिन ढलने लगता तो रमा रात के कष्ट की सपनास भयभीत हो उठता था मानो काली रात बला बनकर दौड़ती चली आती हो। रात को बार-बार खिड़की खोलकर देखता की सवेरा होने में कितनी देर है। एक दिन बातों-बातों में देवीदीन को रमा का सच पता लग गया। उसने उससे कहा कि मैं किसी से खत लिखवा कर तुम्हारे घर खबर करवा देता हूँ। देवीदीन के चले जाने के बाद रमा बड़ी देर तक आनंद-कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। जिन भावनाओं को उसने कभी मन में आश्रय ने दिया था जिनकी गहराई और विस्तार और उद्वेग से वह इतना भयभीत था कि उसमें फिसलकर डूब जाने के भय से चंचल मन को उधर भटकने भी न देता था उसी अथाह और अछोर कल्पना-सागर में वह आज स्वच्छंद रूप से क्रीडा करने लगा। उसे अब एक नौका मिल गई थी।

तभी देवीदीन ने आकार उसे झंझोड़ा और बाजार चलने को कहा पर रमा जाने को राजी न हुआ। देवीदीन लाचार होकर अकेला ही गया। रमा के लिए ऊनी और रेशमी कपड़े लेकर वापस आया। रमा ने देवीदीन से पूछा "तुम विलायती कपड़े नहीं पहनते।

देवीदीन की मुद्रा सहसा तेजवान हो गई। हकड़ कर बोला जिस देश में रहते हैं जिसका अन्न-जल खाते हैं। उसके लिए इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है। दो जवान बेटे इसी सुदेशी की भेंट कर चुका हूँ दोनों विदेशी कपड़ों की दुकान पर काम करते थे किसी भी ग्राहक को कपड़े नहीं खरीदने देते। हाथ जोड़कर, घिघियाकर, धमकाकर, लज्जाकर सबको फेर लेते थे। सबों ने जाकर कमिश्नर से फरियाद की। सुनकर आग हो गया। गोरों की फौज भेज दी। गोरो ने दोनों से कहा यहाँ से चले जाओ

पर वह अपनी जगह से जौं भर न हिले। गोरो ने डंडों से दोनों की खूब पिटाई की लेकिन हाथ उठाना तो दूर, सिर तक न उठाया। अंत में दोनों उसी रात सिधार गए। जब अर्थी चली तो लाख आदमी साथ थे। तब से दुकानदारों ने कसम खाई कि विलायती कपड़े अब न मँगावेगे। तब से विदेशी दियासलाई तक घर में नहीं लाया।

रमा ने सच्चे दिल से कहा–दादा तुम सच्चे वीर हो और वे दोनों लड़के भी सच्चे योद्धा थे। तुम्हारे दर्शनों से आँखें पवित्र हो गई।

कई दिनों बाद एक दिन आठ बजे रमा पुस्तकालय से लौट रहा था कि मार्ग में उसे कई युवक शतरंज के किसी नक्शे की बातचीत करते मिले। यह नक्शा वहाँ के हिन्दी दैनिक पत्र में छपा था और उसे हल करने वाले को पचास रुपये इनाम देने का वचन था। रमा ने वह नक्शा हल करके पचास रुपये प्राप्त कर लिये। बुढ़िया ने रमा से वह रुपये घर भिजवाने को कहा परन्तु रमा ने कहा श्मेरा घर यही हैं अम्मा। कोई दूसरा घर नहीं है।

बुढ़िया का वंचित हृदय गदगद हो उठा। उसने कहा कि पचास है बेटा। पचास मुझले ले लो। चाय का पतीला रखा है चाय की दुकान खोल दो। यहीं एक तरफ चार–पाँच मोढ़े और एक मेज रख लेना दो–दो घंटे बैठ जाओगे तो गुजर–भर को मिल जाएगा रमा ने बात मानकर चाय की दुकान खोल ली। दुकान केवल रात को खुलती थी। दिन–भर बंद रहती थी। रात को भी अधिकतर देवीदीन ही दुकान पर बैठता, पर बिक्री अच्छी हो जाती थी रमा ने मनोरंजन की भी कुछ सामग्री जमा कर दी। दो दैनिक–पत्र भी मँगाने लगा। दुकान चल निकली। दुकान का खर्चा निकाल कर तीन चार रुपये बचे रहते थे।

इन चार महीनों की तपस्या ने रमा की भोग लालसा को और भी प्रचंड कर दिया था। जब तक हाथ में रुपये न थे वह मजबूर था। रुपये आते ही सैर–सपाट के धुन सवार हो गई।

एक रात रमा 'मनोरमा थियेटर' में राधेश्याम का ड्रामा देखने गया। वहाँ रास्ते में कुछ पुलिसवाले मिल गये, पुलिस ने रमा से नाम पूछा तो रमा ने गलत नाम, पता बताया। पुलिस को संदेह हुआ, वह उसे थाने ले जाने लगे तभी देवीदीन वहाँ आ गया। उसने सिपाहियों से बहुत कहा परन्तु सिपाहियों को रमा पर विश्वास न हुआ। वह उसे लेकर पुलिस स्टेशन चले गये। पुलिस स्टेशन में रमानाथ ने अपनी सारी व्यथा सुनाई। पछि–पछि देवीदीन भी सिफारिश करने पहुँच गया। दरोगा ने कहा कि रमा पर पाँच सौ रुपये ईनाम है जो देवीदीन ने पैसों का बंदोबस्त कर फिर आने को कहा। देवीदीन चला गया तो दरोगा जी ने सहृदय रमा से कहा–गर में कोई तरकीब बतलाऊँ कि देवीदीन के रुपये भी बच जाये और तुम्हारे ऊपर हर्फ न आय। दरोगा ने रमा को एप्रूवर बना लिया। देवीदीन को रमा का मुखबिर बनना अच्छा न लगा। वह रमा को दरोगा के पास छोड़कर वापस घर आ गया। उसके मुख पर पराभूत वेदना ऊपर आयी। ऊपर जापला को ज्ञात हुआ कि रमा कलकत्ता में है तो वह भी देवर गोपी के साथ उसे तलाशते हए कलकत्ता में श्प्रज्ञा मित्रश के दफ्तर में आ गई। चपरासी उसे लेकर देवीदीन के घर जा पहुँचा। देवीदीन ने जालपा को बताया कि गिरफ्तार होने के डर से रमा सरकारी गवाह बन गया है।

'सरकारी गवाह' का आशय जालपा से छिपा न था। समाज में उनकी जो निन्दा ओर अपकीर्ति होती है वह भी उससे छिपी न थी। सरकारी गवाह क्यों बनाए जाते हैं, किसी तरह उन्हें प्रलोभन दिया जाता है, किस भाँति वह पुलिस के पुतले बन जाते हैं, अपने मित्रों का गला घोटते हैं, उसे मालूम था।

जालपा देवीदीन के साथ रमा से मिलने बंगले पर गई पर वहाँ मालूम हुआ कि वह पंद्रह–बीस दिन में आयेगा। वहाँ पर उसने रमा की बहुत निन्दा सुनी। निन्दा सुनकर उसका हृदय टुकड़े–टुकड़े हो जाता था। उसे रमा पर क्रोध न आया, ग्लानि न आई, उसे सहारा देकर इस दलदल से निकालने को उसका

टिप्पणी

मन विकल हो उठा। रमा चाहे उसे दुत्कार ही क्यों न दे उसे ठुकरा ही क्यों न दे, वह उसे अपयश के अँधेरे खड्ड में न गिरने देगी। एक महीना गुजर गया। जालपा ने गोपीनाथ को वापस घर भेज दिया। स्वयं देवीदीन के घर में रहकर रमा की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर रमानाथ दो महीनों से राजसी भोग, विलास में डूबा हुआ है, रहने को बंगला है, चौकीदार है, बावची है, मोटर है। विलास ने उसकी विवेक बुद्धि को इतना सम्माहित कर दिया है। उसे कभी ख्याल भी न आता कि मैं क्या कर रहा हूँ और मेरे हाथों कितने बेगुनाहों को खून हो रहा है। इस भोग विलास में रमा को अगर कोई अभिलाषा थी तो यह कि जालपा भी यहाँ होती।

एक महीना देहात की सैर करने के लिए बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बंगले पर जा रहा था रास्ता देवीदीन के घर के सामने था अनायास ही उसकी निगाह ऊपर उठ गई वहाँ जालपा को देखकर उसने नायब दरोगा से गाड़ी रोकने को कहा परन्तु मोटर नहीं रुकी। बँगले पर पहुँचकर रमा सोचने लगा, जालपा से कैसे मिलूँ? आधी रात को किसी तरह बंगले से निकलकर वह देवीदीन के घर जालपा से मिलने पहुंचा।

वियोगियों के मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है जो बातों में कट जाती है रमा और जालपा दोनों ने अपनी-अपनी आप बीती सुनाई। जालपा ने रमा को समझाया-तुम अदालत में साफ-साफ कह दो कि मैंने पुलिस के चकमे में आकर गवाही दी थी। मेरा इस मुआवजे से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। रमा मुँह-अँधेरे अपने बँगले जा पहुंचा। किसी को कानोकान खबर न हुई। रमा दरोगा के पास पहुँचा और कहा-मैं इस मुआमले में अब कोई शहादत न दूंगा। मुझे मालूम हो गया है मेरे ऊपर कोई इल्जाम नहीं है। आप लोगों को चकमा था। पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता, मैं आज जज साहब से साफ कह दूँगा। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा। दारोगा और इंस्पेक्टर उसे प्रलोभन दे रह थे एक मिनट सन्नाटा रहा। फिर डिप्टी ने उसे रूखेपन से कहा कि-तोम पुलिस को धोखा देना दिल्लगी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था। बस चला जाएगा सात साल के लिए। चक्की पीसते-पीसते हाथ में घट पड़ जाएगा। यह चिकना गाल नहीं रहेगा।

रमा का चेहरा फीका पड़ गया। काँपती हुई आवाज में बोला-आप लोगों की यह इच्छा है तो यही सही। भेज दीजिए जेल। मर ही जाऊँगा न, फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जाएगा जब आप यहाँ तक मुझे तबाह करने को तैयार है तो मैं भी मरने को तैयार हूँ। जो कुछ होगा। इंस्पेक्टर साहब ने मौका ताड लिया वह रमा को अपने साथ ले गया।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और बैस्टिर मोटर से उतरे। कचहरी में रमानाथ की पेशी हुई उसका बयान शुरू हुआ वहीं पुलिस की सिखाई हुई शहादत थी। जालपा को रमा से यह उम्मीद न थी। वह देवीदीन के साथ घर आ गई। एक महीना गुजर गया। जालपा कई दिन तक बहुत विकल रही कई बार उन्माद हुआ कि अभी सारी कथा किसी पत्र में छपवा दूं। पर आत्मा की गहराइयों में छिपी हुई कोई शक्ति उसकी जुबान बंद कर देती थी मुकदमें की सारी कार्रवाई समाप्त हो चुकी थी केवल फैसला सुनाना बाकी था। सारा अभियोग उसी के बयान पर अवलम्बित था। फैसले में एक को तो फाँसी की सजा मिली। पाँच को दस-दस साल और आठ को पाँच-पाँच साल की कैद मिली। जालपा के मन में रमा के प्रति ऐसी उत्तेजनापूर्ण घृणा हुई कि वह उदासीन न रह सकी। उसके मन में ऐसा उद्वेग उड़ा कि इस वक्त वह आ जाएँ तो ऐसा धिक्कारूँगी कि वह भी याद करे।

शाम हो गई। सहसा एक मोटरकार दरवाजे पर आकर रुकी उसमें से रमा उतरा। जग्गों और जालपा ने उसे बहुत बुरा कहा उन्होंने रमा की कोई बात नहीं सुनी। रमा वापस चला गया, रमा ने सोचा क्यों न

टिप्पणी

जाकर जज साहब को सारी सच्चाई बता दूँ फिर ख्याल आया जज ने पूछा तुमने झूठी गवाही क्यों दी तो क्या जवाब दूंगा? यह कहना की पुलिस ने मुझसे जबरदस्ती झूठी गवाही दिलवाई, प्रलोभन दिया, मारने की धमकी दी तो लज्जास्पद बात होगी। उसी लाज ने आज रमा के पग पीछे हटा दिए। एक महीना और निकल गया। मुकदमे के हाईकोर्ट में पेश होने की तिथि नियत हो गई रमा के स्वभाव में फिर वहीं पहले सी भीरूता और खुशामद आ गई है, अफसरों के इशारों पर नाचता है कभी-कभी उसके कमरे में एक वेश्या जोहरा भी आ जाती है जिसका गाना वह बड़े शौक से सुनता है जोहरा पुलिस के कहने पर रमा से प्रेम का नाटक करती है रमा भी साधारण मनुष्यों की भाँति भोग-विलास करना चाहता था जालपा की ओर से हटकर उसका विलासासक्त मन प्रबल वेग से जोहरा की ओर खिंचा। रमा ज्यों-ज्यों जोहरा के प्रेमपाश में फँसता जाता था पुलिस के अधिकारी वर्ग उसकी ओर से निशशंक होते जाते थे। एक दिन मोटर में घुमते हुए उसने जालपा को देखा उसकी छाती धक-से हो गई। वह कितनी दुर्बल! मानो कोई वृद्धा, अनाथ हो, न वह कान्ति न वह लावण्य, न वह चंचलता न वह गर्व। रमा हृदयहीन न था। उसकी आँखें सजल हो गई। रमा की सारी चंचलता, सारी भोगलिप्सा गायब हो गई थी। रमा ने सारी बात जोहरा को बताई। जोहरा वेश्या थी उसकी आँखों में आदमियों की परख थी पहले वह रमा के पास पुलिस की गुलाम बनकर आई थी लेकिन अब वह रमा से प्रेम करती है। जोहरा ने जाकर जालपा से बात की उसे रमा से बात करने को राजी कर लिया। जालपा और रमा दोनों मिले सारे गिले शिकवे दूर हुए। रमा ने अपना बयान बदलने की ठानी मुकदमे की फिर पेशी हुई। पुलिस की शाहदतें शुरू हुई। डिप्टी सुपरिटेंडेंट इंस्पेक्टर दरोगा नायाब दारोगा सभी के बयान हुए। बाद में रमानाथ का बयान हुआ१ उसने अपने जीवन के गत एक वर्ष का पूरा वृत्तान्त कह सुनाया उसके बाद जालपा, जोहर और देवीदीन के भी बयान हुए। जालपा का बयान बहुत ही प्रभावोत्पादक था उसे सुनकर दर्शकों की आँखों में आँस आ गए। उसके अन्तिम शब्द ये थे-मर पात निदोष है। जज ने सारे मामले की तहकीकात की ओर अन्त में रमानाथ को बरा कर दिया।

तीन साल गुजर गए है रमा और देवी ने प्रयाग के समीप आकर आश्रय लिया है। देवी ने जमीन ली, बाग लगाया, खेती जमाई, गाया-भैंसे खरीदी और कर्मयोग में अविरत उद्योग में सुख संतोष और शान्ति का अनुभव कर रहा है। दयानाथ नौकरी से बरखास्त हो गए थे और अब वह देवी के असिस्टेंट है। रमा ने वैद्यक की कई किताबें पढ़ ली थी अब छोटी-मोटी बीमारियों की दवा देता। जोहरा एक दुर्घटना की शिकार हो गई थी मगर अभी तक जोहरा की सूरत उनकी आँखों में सामने फिरा करती है। उसके लगाये हए पौधे, उसकी पाली हुई बिल्ली उसके हाथों से सिले हुए कपड़े, उसका कमरा यह सब उसकी स्मृति के निदान है और उनके पास जाकर रमा आँखों के सामने जोहरा की तस्वीर खड़ी हो जाती है।

गबन उपन्यास का सार

गबन उपन्यास में टूटते मूल्यों के अंधेरे में भटकते मध्य वर्ग का वास्तविक चित्रण किया है। मध्य वर्ग की समझौतापरस्त एवं महत्वाकांक्षी मनोवृत्ति और पुलिस के चरित्र को बेबाकी से प्रस्तुत करके प्रेमचंद ने इस कथा को जीवंत बना दिया है।

गबन एक ऐसे चरित्र की कहानी है जिसके मन में ऊँचा जीवन जीने की चाह गहराती जाती है। इसी उधेडबन में वह पत्नी के गहनों की चोरी करता है। सरकारी रुपये का गबन करता है, यहाँ तक कि देशभक्तों के खिलाफ मुखबिर भी बन जाता है। इतना सब करता हुआ रमानाथ एक ऐसे वर्ग का प्रतीत बन जाता है जो स्वार्थ ओर लालच की अंधेरी सुरंगों में भटक रहे हैं। श्गबनश् की कहानी प्रवाहमय तथा अत्यंत सजीव है और पाठक को अभिभूत कर देती है।

टिप्पणी

5.2 गबन और राष्ट्रीय आन्दोलन

प्रेमचंद ने मध्य वर्ग को निकट से जाना एवं उसकी लालसाओं को बहुत बारीकी से पहचाना था वह समझते थे कि औपनिवेशिक सांमत शोषण की छाया में विकसित भारतीय मध्य वर्ग संभावनाओं से भरा लेकर भी भीतर से कितना पोला है खास कर पश्चिमी सभ्यता के असर में जैसे-जैसे वह अपनी जड़ से कटता जा रहा है अधिक पोला होता जा रहा है। चूंकि भारतीय मध्य वर्ग को आगामी दिनों एक बदलाव का नेतृतव करना था इसलिए प्रेमचंद उसकी विडंबनापूर्ण दशा से चिंतित थे। वह चाहते थे कि मध्यवर्ग अपने अंर्तविरोधों से यथासंभव उबरे तथा अपनी ऐतिहासिक भूमिका पहचाने। इसी उद्देश्य से उन्होंने गबन की रचना की तथा रमानाथ का चरित्र खड़ा किया। बहुत स्पष्ट ढंग से उन्होंने आरंभ में ही बता दिया कि रामनाथ पढ़ा-लिखा एक ऐसा नवयुवक है जिसकी शैतान तबियत पर अंग्रेजियत का जाइ चढ़ा हुआ है परंतु यह सब परम्परागत दृष्टिकोण के संरक्षक रमानाथ के पिता दयानाथ को बर्दाश्त नहीं होता। यह मिलावटी संस्कृति से चिढ़कर कहते हैं।

'हिंदुस्तानी रईसों के कमरे में मेज-कुर्सियों नहीं होती, फर्श होता है। अपने कुर्सी-मेज लगाकर इसे अग्रजी ढंग का तो बना दिया. अब आइने के लिए हिन्दुस्तानियों की मिसाल दे रहे हैं। या तो हिन्दुस्तानी रखियें या अंग्रेजी। यह क्या कि आधा तीतर आधा बटेर।'

रमानाथ के पिता का इशारा मध्यवर्ग जीवन के अंतर्विरोधी की ओर ही नहीं, राष्ट्रीय जीवन के उसष्हर सांस्कृतिक संकट की ओर भी है जो गुलामी की राजनीति के कारण पैदा हुआ था। नयी शिक्षा और अर्थव्यवस्था के विकास के साथ यह संकट निरंतर गहरा रहा था। अंग्रेजों की नकल या उनकी मुसाहिबी से राजनैतिक संस्कृति का एक ऐसा भेजाल रूप विकसित हो रहा था कि भारतीय मनुष्य की आत्मपहचान पर संकट बढ़ गया। एक ओर सामंतवादी जीवन-मूल्य थे दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता के मूल्य। इनके भेजाल से मारजिनल मैन की शक्ल किस हद तक बिगड़ सकती है। प्रेमचंद ने श्गबनश में स्पष्ट किया। 'मारजिनल मैन' अर्थात सीमांत मनुष्य रूढ़िवाद तथा आधुनिकता के बीच सीमा पर रहने वाला एक ऐसा मनष्य है जो आधुनिकता की मार पडने पर रूढ़िवाद की शरण लेता है, रूढ़िवाद द्व ारा सताये जाने पर आधुनिकता की तरफ भागता है। वह दोनों के बीच सीमा पर रहकर देखता है कि सुविधा किधर है।

बड़े समाज में खास तौर पर जहाँ सभ्यता का विकास हो रहा हो, व्यवस्था को चलाने के लिए नौकरशाही का विकास होता है उसी प्रकार लोगों के अभावग्रस्त जीवन में जब व्यक्तिगत महत्वकाक्षाएँ उदित हो रही हो नौकरशाही में भ्रष्टाचार का बोलबाला भी बढ़ जाता है। यह जनता की जरूरतें पूरी करने के लिए स्थापित होती है लेकिन जनता का इस पर कोई नियंत्रण नहीं होता। रमानाथ जिस नौकरशाही का पूर्जा था उसका लक्ष्य मानवीय जरूरतें पूरा करना नहीं बल्कि भारतीय जनता के उपनिवेशवादी शोषण का मंच बनना था। स्वतंत्र भारत की नौकरशाही में भ्रष्टाचार की गंगोत्री वहीं से फूटी अवश्य तब इतनी बेशर्मी न थी। सम्मान बचाकर रिश्वत दी जाती थी श्गबनश में चूंगी के संदर्भ में ब्रिटिश कालीन रिश्वतखोरी का अच्छा चित्र खींचा गया है। इसके बावजूद रमानाथ की आर्थिक समस्या दूर नहीं होती क्योंकि रुपये एक राह से आते और दूसरी राह से खर्च हो जाते हैं।

रमानाथ सुनार का बकाया चुकाने के लिए रत्न के रुपये जो उसने कंगन बनाने को दिये थे सुनार को दे देता हैं और रतन के रुपये लौटाने के लिये उसे चुंगी में रुपयों का गबन करना पड़ा। तनावपूर्ण ग्लानि से उसकी मानसिक स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि उसे घर से कलकत्ता भाग जाना पड़ा।

टिप्पणी

कलकत्ता में उसकी भेट देवीदीन से हुई ओर वह उसी के घर रहने लगा। रमानाथ अपने मध्यवर्गीय संस्कारों का कैदी था। देवीदीन के घर रहते हुए उसमें राष्ट्रीय और प्रगतिशील भावनाओं का उदय हुआ। वह स्वदेशी आंदोलन में देवीदीन के दो बेटों के बलिदान और बुढ़िया की मातृत्व आपूरित करुणा से प्रभावित था। रमानाथ भी सोचता था श्कुंजी बहुमत के हाथों में रहेगी और अभी दस-पाँच बरस चाहे न हो आगे चलकर बहुमत किसानों और मजरों का हो जायेगा।श यह जनतांत्रिक विप्लब की ओर संकेत है। मध्य वर्ग ऊँच-नीच और जाति-मर्यादा का बहुत ध्यान रखता है। लेकिन राष्ट्रवादी आन्दोलन तथा देवीदीन के धर पर मिले स्नेह के कारण रमानाथ के मन से भेदभाव दूर हो रहे थे। उसके चरित्र का यह बाहरी परिवर्तन था क्योंकि प्रलोभनों के सामने पड़कर उसके पुरातन संस्कार पुनः उस पर हावी हो गये और स्वार्थवश वह अपनी आत्मा तक बेच देने के लिए तैयार हो गया। वह डरपोक था। अतः दरोगा ने उसे सहजता से फांस लिया। यह ट्रेजिडी सिर्फ रमानाथ की नहीं थी और न यह अंर्तविरोध रमानाथ का खास अपना था। यह कथा पूरे मध्यवर्ग की थी। इसका एक बड़ा हिस्सा अंग्रेज सरकार का मुसाहिब रमानाथ का खास अपना था। जिसका सांमती-पूँजीवादी सिद्धांतों से कोई वास्तविक विरोध नहीं था।

भारतीय मध्यवर्ग का सामाजिक विश्लेषण करे तो देखेंगे कि उच्च वर्ग का व्यक्तिगत लक्ष्य था स्वतंत्रता स्वाधीनता-आंदोलन के बड़े नेता श्रेणी से उभरे थे। निम्न मध्यवर्ग का लक्ष्य सम्मान प्राप्त करना था। दस आदमी उसकी कदर करे इस वर्ग के लोग इतना चाहते थे। बीच के मध्यवर्गीय लोगों का लक्ष्य था अपना व्यक्तिगत भविष्य निर्मित करना। रमानाथ पहले तो सिर्फ सम्मान का भूखा था लेकिन उसने सरकारी मुखबिर बनना स्वीकार किया अपना सुंदर भविष्य बनाने के लिए। वह एक पर्त ऊपर उठा। उसने जीवन में कष्ट झेला था और मजा भी लिया था। अतः सामने खुशी जीवन की संभावनाएँ देखकर कष्टों का वरण करने की नैतिकता उसमें पैदा न हो सकी। रमानाथ के मन में देवीदीन बढ़िया और जालपा के प्रति जितनी भी सहानुभूति हो स्वतंत्रता सेनानियों के खिलाफ झूठे मुकदमें में गवाही देकर उसे जो सरकारी कृपा मिलती उससे वंचित होने की वह कल्पना नहीं कर सकता था इस मुकदमें पर मेरठषडयंत्र केस का प्रभाव कहा जाता है। अंग्रेज सरकार स्वाधीनता सेनानियों को तंग करने के लिए उन पर डकैती के मुकदमें लाद देती थी और प्रलोभन देकर इनके खिलाफ झूठी गवाहियाँ भी इकट्ठी कर लेती थी। आतंकवादी पुलिस अपना दमन चक्र तीव्र करने के लिए कुछ लालची नागरिकों को तमगा पुरस्कार और अच्छी नौकरियाँ उसी प्रकार दे देती थी जिस प्रकार नेपोलियन या हिटलर ने अपने सैनिकों का आर्थिक स्तर ऊँचा कर देने के साथ-साथ अपने नागरिकों को भी ढेर सारे प्रलोभन दिये या पूँजीवादी सरकारें आज भी उपलब्धिता वितरण करती है। प्रेमचंद ने पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार को खोलकर रख दिया, जो उस समय एक साहसिक कदम था। रमानाथ ऐसे प्रलोभनों में धिरकर सुध ारवादी हो जाता है। कभी जालपा को आभूषणों का मोह था अब रमानाथ आपादमस्तक अंग्रेजी रागरंग में डूब गया था। दोनों जिंदगियों के बीच एक नयी दीवार खड़ी हो गयी थी।

रमानाथ को अपनी राष्ट्रवादी विरोधी भूमिका का बोध था वह पुलिस विभाग के प्रलोभनों में फँसकर विलासिता में लिप्त था एवं अदभुत रईसी का जीवन बिता रहा था। फिर भी वह अपने इस मानसिक अंर्तदद्धं से कभी मुक्त नहीं हो सका कि उसकी गवाही से कई बेगुनाहों को भारी सजा मिलेगी। जालपा के खत ने उसका अंतर्दद्ध और तीव्र कर दिया। उसे उसका भी पता चला कि उस पर गबन को कोई मुकदमा नहीं है। उसे पुलिस ने धोखा दिया है। जालपा उसे झूठी गवाही देने से रोकना चाहती थी क्योंकि इससे अपयश होता। मुलाकात होने पर और दबाव के साथ बयान बदलने का आग्रह करती है। जालपा के व्यक्तित्व में राष्ट्रवादी उभार आता है उसमें सम्मानित जिंदगी जीने की अभिलाषा प्रबल हो उठती है।

टिप्पणी

वस्तुत: मध्यवर्ग का एक दूसरा हिस्सा भी था जो राष्ट्रवादी आंदोलनों में शरीक था। उसमें कष्ट सहकर भी सेवा राष्ट्रीयता और जनतंत्र की भावनाओं का प्रसार करने का गहरा माझा था। रमानाथ की दृष्टि भिन्न थी जिस मुँह से एक बात कही उसी मुँह से मुकर जाऊ यह तो मुझसे न होगा। फिर मुझे कोई अच्छी जगह मिल जाएगी। आराम से जिंदगी बसर होगी। मुझमें गली-गली ठोकर खाने का पता नहीं है। ..... दुनिया में सभी थोड़े ही आदर्श पर चलते है। मुझे क्यों उस ऊँचाई पर चढ़ाना चाहती हो जहाँ पहुँचने की शक्ति मुझमें नहीं है। इसमें आश्चर्य न होगा कि प्रेमचंद जिस युग में लिख रहे थे उसमें स्त्रियाँ ही पुरुषों को मार्ग दिखा रही थी।

5.3 गबन और मध्यवर्गीय समाज

पुराने सांमती समाज में मध्यवर्ग सीमित था। व्यक्ति समुदाय पर निर्भर था। उसके जीवन में अधिक हलचल नहीं थी। वह जहाँ पैदा होता था वही उसकी मृत्यु होती थी। शहरों और उद्योग-धंधों के विकास, ब्रिटिश नौकरशाही को विस्तार तथा शिक्षा के प्रसार के परिणामस्वरूप समाज में मध्यवर्ग का आकार बड़ा हुआ। इसने रूढ़िवाद को छोड़कर बौद्धिक प्रजातांत्रिक धारणाओं को अंगीकार करना शुरू किया। ब्रिटिश शासन-व्यवस्था ने नयी तकनीक नये सामाजिक संगठन तथा नये विचारों की नीव स्थापित कर दी थी। इसलिए पुराने पेशे टूटने ओर नये पेशे बनने लगे। प्रारंभिक अवस्था से ही उपनिवेशवादी शासन को सस्ते कर्मचारियों छोटे वणिकों, आधुनिक शिक्षकों तथा अन्य बुद्धिजीवियों की जरूरत थी इसलिए भारतीय मध्य वर्ग के विकास में तीव्रता आयी। नये पेशे नयी जीवन दृष्टि तथा नयी जीवन पद्धति लेकर जो मध्य वर्ग अपने व्यस्त अस्तित्व में आया, उसका समपूर्ण जीवन अंतविरोधों और विडंबनाओं से भरा था। क्योंकि एक तरफ वह आधुनिकता की ओर बढ़ रहा था, दूसरी ओर रूढ़िवाद से मुक्त नहीं हुआ था। वह सम्पन्नता की ओर लालयित होकर बढ़ना चाहता था। लेकिन उसका आर्थिक आधार खोखला था। वह विपरिताओं में फँस जाता था जिनकी परिणति त्रासदी में होती थी। वास्तव में यह मध्यवर्गीय मनुष्य के आत्म प्रवचनपूर्ण चरित्र की करूण कथा है जिसे प्रेमचंद जी ने मनोवैज्ञानिक सच्चाई के साथ चित्रित किया है।

इस दृष्टि से यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थ का उपन्यास बन गया है रमानाथ जिस मनोवृत्ति से ग्रस्त है वह है प्रदर्शन और मिथ्याभिमान की प्रवृत्ति।

मध्यवर्ग जाहिर है अमीर और गरीब के बीच की चक्की में जीता है। वह न तो अमीर जैसा जीवन जी सकता है और न अपनी वास्तविकता में जीकर निम्नवर्ग के आस-पास रह सकता है क्योंकि वह एक ओर अमीर के समानांतर बैठना चाहता है और दूसरी ओर अपने को निम्नवर्ग से विशिष्ट एवं उच्च रखना चाहता है। उसकी यह मनोवृत्ति उसे एक झूठ संसार में जीने के लिए मजबूर कर देती है। रमानाथ इसी वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है जिसकी जीवन गति को पढ़कर वह सत्य भली-भाँति हृदयगम हो जाता है कि इस वर्ग का चरित्र आत्मघाती एवं प्रवचनापूर्ण है। कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि दयानाथ जैसे यथार्थ-जीवी सत्यप्रिय एवं चरित्रवान पिता का पुत्र होते हुए भी रमानाथ घूसखोर, आत्मछली, प्रदर्शन-प्रिय और मिथ्याहंकारी कैसे हो गया? जो लोग इस प्रश्न से टकरायेगे वे ही इस उपन्यास की मूल चेतना तक जा पायेगे। दरअसल दयानाथ और रमानाथ के बीच एक पीढ़ी का अंतर है। यह अंतर उतना नहीं है जितना कि प्रवृतिगत है। दयानाथ उस भारतीय आदर्श के प्रतीक है जो विश्वास, सत्य और सच्चरित्रता को अपनी पूँजी मानकर जीता है वे मध्यवर्ग की उस जिंदगी के कतई कायल नहीं है जिसकी ढोल में पोल ही पोल होती है जो भीतर से एकरम खोखला हो किंतु बाहर से चमकदार और हरा भरा होता है।

प्रेमंचद ने गबन में मध्यवर्गीय जीवन की बुरी दशा का चित्र खींचा इस वर्ग की अनैतिकता और स्वार्थपरता की ओर संकेत किया। लेकिन उनका मूल उद्देश्य इस वर्ग के जीवन में परिवर्तन की संभावनाओं का पता लगाना था। मध्यवर्ग अपने हित को सर्वोपरि महत्व देता है। पर इसमें एक ऐसी प्रेरणा शक्ति भी है जो उसे सामाजिक परिवर्तन में हिस्सेदार बनाती है। इस वर्ग की नारियों की स्थिति सबसे अधिक दीन-हीन है। उपन्यास में विधवा रतन मणिभूषण के आगे कितनी मेहनतकाश होती है। इसलिए वे इतनी लाचार नहीं होती। देवीदीन की पत्नी सब्जी बेचती हे। उसकी आवाज देवीदीन जैसी ही ऊँची है। कथाकार ने मध्यवर्गीय नारियों की विडंबनापूर्ण स्थिति के संदर्भ में जालपा का एक नया उदाहरण रखा है और दिखाया है कि मध्यवर्ग में अनन्त संभावनाएँ हैं। जिस तरह जालपा ने अपने स्वत्व को पहचाना रमानाथ का मध्यवर्गीय भटकाव दूर किया तथा राष्ट्रीय आंदोन में हिस्सा लिया, विडंबनाओं और अंतविरोधी से घिरे मध्यवर्ग के दूसरे लोग भी अपना सही स्वत्व पहचान सकते हैं। भटकाव से मुक्त हो सकते हैं तथा राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में अपने महान दायित्व का संपादन कर सकते हैं।

5.4 गबन का औपन्यासिक शिल्प

'गबन' उपन्यास की कथा दो खण्डों के विभक्त हो गयी है। फलसवरूप उसके उद्देश्य की एकतानता टूट गया है अत: वह अंत तक एक ही नहीं रहा। आरंभ से रमानाथ म्यनिसिपैल्टि में गबन करने तक की कथा एक पारिवारिक सामाजिक समस्या को केन्द्र में रखकर चलती है। जालपा का आभूषण प्रेम रमानाथ की प्रदर्शन भावना और मिथ्या गौरव की प्रवृति, कर्जखोरी और गबन इस समाज के ऐसे रोग है जो उसे निरंतर खोखला एवं प्राणहीन कर रहे है। यह सत्य उपन्यास के पूर्वार्द्ध की कथा में बड़ी तल्खी के साथ महसूस होता है किन्तु जब रमानाथ रुपये न दे पाने की स्थिति में घर से भागकर देवीदीन के साथ कलकत्ता चला जाता है। तो उपन्यास की कथा एक नया मोड़ ले लेती है और पूर्वकथा में व्यक्त मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ का दश हल्का समाप्त हो जाता है। कलकत्ता आकर रमानाथ कुछ दिन तक तो देवीदीन के घर से निकलता तक नहीं और एक दिन सकपकाता हुआ निकलता है तो पुलिस के द्वारा संदेह में पकड़ लिया जाता है। बाद में वे उसे क्रांतिकारियों के खिलाफ गवाही देने के लिए मजबूर कर देते है। यही से उपन्यास की कथा राजनीतिक रंग ले लेती है और अमृतराय के शब्दों में सामाजिक उपन्यास राजनीतिक उपन्यास बन जाता है। उत्तरार्द्ध में प्रेमचंद जी ने उस समय के (सन् 1930 के आस पास) क्रांतिकारियों के साथ हो रहे अन्याय का चित्रण किया है। किस तरह सरकार उन पर झूठे मुकदमों चलाकर उन्हें परेशान करती थी और किस प्रकार उन मुकदमों को चलाने के लिए लोगों पर दबाव डालकर प्रलोभन देकर झूठी गवाही दिलाती थी। इस सबका बड़ा ही मार्मिक एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। रमानाथ को एक डकैती के संदर्भ में क्रांतिकारियों के खिलाफ गवाही देने के लिए पुलिस के द्वारा बाह्य किये जाने के बाद उपन्यास का पहला उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज की आत्मघाती मनोवृत्ति का चित्रण पीछे छूट जाता है ओर पुलिस के काले कारनामों और अत्याचारों का चित्रण प्रधान हो जाता है। ऐसा क्यों हुआ? प्रेमचंद जी ने उपन्यास के सामाजिक स्वरूप को राजनीतिक रंग क्यों दे दिया?

इनका उत्तर अमृतराय जी ने कलम का सिपाही में दिया हैं। उन्होंने लिखा है कि प्रेमचंद जी जब इस उपन्यास को लिख रहे थे उस समय एक महत्वपूर्ण घटना हुई। 20 मार्च 1929 के आस-पास देश भर में जो तलाशियाँ और लोगों की धर-पकड़ हुई लोगों पर झूठे मुकदमें चलाये गये, क्रांतिकारियों की सरगार्मियों बढ़ी इन सबने प्रेमचंद जी को प्रभावित किया। अत: एक जागरुक साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद जी ने उस युग चेतना और स्थिति को जो कि उस समय एक ज्वलन्त प्रश्न के रूप में उपस्थित थी, उपन्यास की उत्तरार्द्ध वाली कथा का केंद्र बिन्दु बना लिया। वे लिखते हैं......

टिप्पणी

'ताज्जुब की बात होती अगर मुंशी जी का लिखना इस जबरदस्त हलचल का असर न लेता और उसने लिया, आनन-फानन लिया। एक अच्छे शिल्पी के सधे हाथों का काम है इसलिए जोड़ का पता नहीं चलता मगर गौर से देखो तो श्गबनश के पूर्वार्द्ध में जोड़ है। दोनों का रंग, दोनों की हवा, दोनों की बू-बास सब कुछ अलग अलग हैं।"

नंददुलारे वाजपेयी ने दोनों कथाओं के इस जोड़ को कमजोर बताते हुए लिखा है।

"यद्यपि इन दोनों कहानियों को प्रेमचंद जी ने एक स्वाभाविक क्रम से जोड़ने की चेष्टा की है परन्तु उद्देश्य और प्रभाव की दृष्टि से वे कथा की एकात्मकता की रक्षा नहीं कर सके। यदि पूरा उपन्यास प्रयोग की घटनाओं से ही संबद्ध रहता तो उसमें रचना संबंधी पूर्णता आ जाती। उसका प्रभाव भी अधिक तीव्र हाता और कदाचित मध्यवर्ग की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर तीव्र प्रकाश पड़ता है।"

इसलिए उन्होंने इस उपन्यास में दो उपन्यास की स्थिति स्वीकार की है एक सामाजिक उपन्यास की जिसकी कथा इलाहाबाद की घटनाओं से सम्बन्ध है और दूसरी राजनीतिक उपन्यास की जिसका सम्बन्ध कलकत्ते की घटनाओं से हैं वाजपेयी जी की इस स्थापना से असहमत होने के लिए कोई कारण नहीं दिखायी पड़ती किंतु इतना मानना पड़ेगा कि प्रेमचंद ने जिस कौशल के साथ सामाजिक उपन्यास में राजनीति संदर्भ जोड़ दिया है वह प्रशंसनीय है। यह प्रमाणित करता है कि वे ऐसे साहित्यकार थे जो किसी कीमत पर युग-संदर्भ से काटकर नहीं रह सकते थे। भले ही श्गबनश का उत्तरार्द्ध राजनीतिक हो गया हो उद्देश्य की एकात्मकता खत्म हो गयी हो किन्तु इससे उनके पात्रों और कथा की विश्वसनीयता प्रभावित नहीं हुई है। जालपा जिसमें आरम्भ में आभूषण प्रेम ही प्रमुख रूप से दिखायी पड़ता है। वह उत्तरार्द्ध में त्याग, बलिदान, साहस, राष्ट्रीय गौरव और कर्तव्यपरायणता की प्रतिमूर्ति बन जाती है। वह रमानाथ को हर कीमत पर क्रांतिकारियों के खिलाफ गवाही देने से रोकती है और जब वह नहीं मानता है तो उसके रास्ते से हट जाती है यहाँ तक कि उसके इस अपराध के फलस्वरूप फाँसी की सजा पा जाने वाले दिनेश के बाल-बच्चों की जाकर परवरिश करने लगती है। भले ही लोगों को इससे प्रेमचंद की आदर्श भावना नजर आये किन्तु जालपा का यह चरित्र परिस्थितियों की उपज होने के कारण और उसके नारी हृदय की पहचान होने के कारण परम विशवसनीय है। जो लोग श्गबनश के मूल उद्देश्य को एक स्त्री का आभूषण प्रेम मानते हैं। उन्हें सोचना चाहिए कि उपन्यास के उत्तरार्द्ध में वह आभूषण-प्रेमिका क्यों लुप्त हो गयी और उसकी जगह पर एक क्रांतिकारी, राष्ट्र प्रेमी का रूप क्यों प्रधान हो गया? रामनाथ के साथ ऐसा नहीं हुआ। उसमें जो मध्यवर्गीय कमजोरियाँ थीं वे ही उसे निरन्तर पतित करती गयी। उन्हीं के कारण वह पुलिस के प्रलोभन में आकर क्रांतिकारियों के खिलाफ गवाही देने के लिए तैयार हुआ।

उपन्यास के अंत में उसने जो अपना बयान बदला है वह प्रेमचंद जी आदर्श भावना की देन हैं इसलिए इतना करने के बावजूद वह जालपा की सी प्रतिष्ठा नहीं पा सका। इसी तरह रतन और जोहरा में भी जो परिवर्तन होता है वह स्वाभाविक न होकर आरोपित हैं। इन आदर्शवादी परिवर्तनों से कथा की मार्मिकता क्षतिग्रस्त हुई है और 'गबन' एक यथार्थवादी उपन्यास होते-होते रह गया है फिर भी यह 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' जैसा आदर्शवादी भी नहीं जहाँ सुधारवाद और हृदय परिवर्तन की भावना अपनी पूरी व्यापकता में मौजूद है। उनकी अपेक्षा 'गबन' में सामाजिक मनोवैज्ञानिक यथार्थ की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

5.5 अभ्यास-प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'गबन' में शिल्प विधाान पर प्रकाश डालें।
2. 'गबन' उपन्यास को अपने शब्दों में समझाएं।
3. 'गबन' उपन्यास का सार लिखें।
4. 'गबन' उपन्यास के चलते राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रकाश डाले।
5. 'गबन' की औपन्यासिक शिल्प । विस्तार में समझा।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. 'गबन' में मधयवर्ग की समकालीन समस्याओं को उजागर करें।
2. 'गबन' उपन्यास मनुष्य के अपने अंतर्विरोधाों पर विजय पाने का रास्ता है। चर्चा करें।
3. रमाकान्त के चरित्र - चित्रण का वर्णन करें।
4. 'गबन' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने मौजूदा युग कि किस राजनीतिक प्रक्रिया को दर्शाया है?
5. 'गबन' उपन्यास में दो उपन्यासों का स्पष्ट संबंक है, सामाजिक और राजनीतिक। विवेचना करें।

♦♦♦♦♦

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

References and Suggested Reading

lnHk iqLrd

- प्रेमचन्द और उनका युग -डॉ. रामविलास शर्मा
- प्रेमचन्द साहित्य कोष -कमल किशोर गोयनका
- कलम का सिपाही –अमृतराय
- विविध प्रसंग -अमृतराय
- कलम का मजदूर : मदनगोपाल
- प्रेमचन्द घर में- शिवरानी
- प्रेमचन्द : संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
- प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व: हंसराज रहबर किसान,
- राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद वीर भारत तलवार
- प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना : नित्यानन्द पटेल
- प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन नंद दुलाने वाजपेयी
- कथाकार प्रेमचन्द - मन्मथनाथ गुप्त
- प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त नरेन्द्र कोहली
- प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान डॉ. कमल किशोर गोयनका
- रंगभूमि : नये आयाम डॉ. कमल किशोर गोयनका

Internet links

https://www.youtube.com/watch?v=6PbhG2ppRnc

https://www.youtube.com/watch?v=7j9lQow2n1s

https://www.youtube.com/watch?v=ArnBZm7YAjo

https://www.youtube.com/watch?v=kMxurJross0

https://www.youtube.com/watch?v=WBtENmTPRYc